लेखक की अन्य रचनाएँ

उपन्यास :

तीस दिन

हरिजन

कहानी संग्रह :

चवन्नी वाले (द्वितीय संस्करण)

ज्ञान-विज्ञान :

चंदा मामा का देश (द्वितीय संस्करण)

तुम्हारे आस-पास की दुनिया भाग १ (तृतीय संस्करण)

" " " " २ (")

नाटक :

चाय पार्टियाँ, एक सामाजिक व्यंग (प्रेस में)

रेडियो रूपक संग्रह :

बेटी गाँव की (प्रेस में)

विटामिन-युक्त दूध

बाबू विंध्यबिहारी लाल तीस वर्ष तक नौकरी करने के पश्चात् अब अवकाशप्राप्त जीवन व्यतीत कर रहे थे, अर्थात् पहले जहाँ उन्हें केवल दो समय भोजन करने एवं दफ्तर आनेजाने की ही चिंता रहती थी वहाँ अब उन्हें घरबार, पासपड़ोस, बहू बेटी, नाती पोतों की चिंता हरदम सताए रहती थी। इस के अतिरिक्त उन का इहलोक तो किसी प्रकार व्यतीत हो चला था, अब परलोक की चिंता में वह तेंतीस करोड़ अट्ठासी हज़ार देवी देवताओं को मनाने, बहकाने व फुसलाने की चिंता में लगे रहते थे।

सब से पहले तो बाबू साहब ने अपना स्वास्थ्य बनाने की सोची। वह रोज सवेरे घूमने जाने लगे। चार बजे के बाद नींद तो वैसे भी नहीं आती थी, पहले लेटे लेटे दफ्तर के जोड़तोड़ भिड़ाया करते थे अब टहलते हुए मुहल्ले की चिंता अपने सिर लिया करते थे। उन के सवेरे की सैर के साथी थे शर्माजी। वह भी नौकरी से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। दोनों साथ साथ घूमते और कुछ ऐसी बातें उन में होतीं।

"भाई विंध्या बाबू, जमाना क्या कर के रहेगा, कुछ समझ में नहीं आता।"

"क्या हुआ ?"

"अरे यही परमेश्वरी को देख लो। उस की पोती अब सोलह वर्ष की हो गई लेकिन अभी तक उसे उस के व्याह-बरात की कोई चिंता ही नहीं। उस लड़की की बाढ़ अच्छी है। उसे एक एक दिन देख कर मेरा तो खून सूखता जाता है।"

"सुना है वह लड़की डाक्टरी पढ़ने को कहती है।"

"अजी आजकल के लड़के लड़कियों का कहना ही क्या! वे तो जो जी में आता है कहते ही रहते हैं लेकिन उन की सब बातें मान ही ली जाएँ, ऐसा तो जरूरी नहीं।"

"वह तो ठीक है लेकिन जब न सुनें तो क्या करें ?"

"अपनी ओर से तो प्रयत्न करना ही चाहिए। मेरे दोनों पोते कभी भी सात बजे से पहले सो कर नहीं उठते थे। मैं चाहता था कि चार बजे उठें। जब कहसुन कर थक गया तो एक दिन मैं ने चार बजे ही घंटी बजा बजा कर जोर जोर से भजन गाने आरंभ कर दिए और ऊपर से पाँच मिनट तक शंख बजाता रहा। यद्यपि मैं इतना थक गया था कि अपनी सांस ठीक करने के लिए मुझे पंदरह मिनट तक लेटे रहना पड़ा लेकिन घर-भर के लोग जाग गए उस के बाद जहाँ किसी को ऊँघता देखता एक बार फिर शंख बजा देता . . . लेकिन विंध्या बाबू, आज इतनी जल्दी कहाँ चल दिए ?"

परंतु विंध्या बाबू रुके नहीं। आज उन्हें वह अमूल्य वस्तु प्राप्त हुई थी जिस का जोड़ नहीं था। बात यह थी कि बाबू विंध्यविहारी लाल बहुत दिन से सोच रहे थे कि जीवन भर दफ़्तर ही दफ़्तर सोचा किए, घर का ध्यान नहीं रखा। अब अवकाश मिला है तो कुछ घर का ही सुधार करें परंतु उन की समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि कहाँ और कैसे आरंभ करें। यह बात नहीं थी कि वह घर पर चुप रहते थे।

वल्कि सच तो यह है कि वह बूढ़ों की परंपरा को अक्षरशः निभा रहे थे। प्रत्येक विषय पर सही या ग़लत—क्षमा कीजिए, बूढ़ों की कोई बात ग़लत तो हो ही नहीं सकती—सम्मति हर समय देना वह अपना कर्त्तव्य समझते थे और अपनी आज्ञा का उल्लंघन होते देख कर कुड़कुड़ करते थे। फलस्वरूप घर में कुड़कुड़ाहट की एक अविराम धारा प्रवाहित होती रहती थी।

परंतु इस कुड़कुड़ाहट से विंध्या वाबू को मानसिक शांति नहीं प्राप्त होती थी। वह चाहते थे कि कोई ऐसी बात हो जिस पर आतिशबाज़ी हो—असली आतिशबाज़ी, रियल फ़ायर वर्क्स—जिस में जरा बादल की गरज हो, बिजली की कड़क हो और वज्र की कठोरता हो। सोचते सोचते बेचारे टहलने जाने पर भी कमज़ोर होते जा रहे थे। बड़े दिन बाद आज प्रकाश मिला था।

विंध्या वाबू के एकमात्र पुत्र विंद्रा—वृन्दावनविहारी लाल—को जिस की अवस्था लगभग अड़तीस वर्ष की थी और जो तीन बच्चों का बाप था, सवेरे देर से उठने की आदत थी। यही उठता था सात बजे तक। विंध्या वाबू जब घर पहुँचे तो लगभग छः बजे थे। विंद्रा नींद की खुमारी में था।

विंध्या वाबू ने पुकारा, "विंद्रा! ओ विंद्रा!" विंद्रा की माँ ने कहा, "अजी क्या है? सोने क्यों नहीं देते उसे?"

"तुम चुप रहो। तुम्हीं ने उसे बिगाड़ रखा है।"

"क्या बिगाड़ दिया मैं ने?"

"अब तक अहदियों की तरह पड़ा सो रहा है।"

"तो और क्या करे?"

पत्नी ने ऐसी मूर्खता की बात पूछी थी कि विंध्या वाबू की समझ में ही नहीं आया—बल्कि यह कहना ही उचित होगा कि उन्होंने इस बात की आवश्यकता ही नहीं समझी कि कोई उत्तर दिया जाए।

इस हल्लेगुल्ले से बिंद्रा की नींद टूट गई। उस ने अलसाए स्वर में पूछा, "क्या है माँ ?"

माँ के बोलने से पहले ही विंध्या बाबू बोले, "दोपहर तक पड़ा सोता रहता है और पूछता है क्या है ?"

"अभी तो सात भी नहीं बजे।"

"यह सोने का वक़्त है ?"

"तो और क्या करूँ ?"

फिर वही मूर्खतापूर्ण प्रश्न ! माँ बेटे दोनों ही एक से हैं। तभी बिंद्रा ने अंगड़ाई ली और इस क्रिया में उस ने अपने हाथ ऊपर उठाए तो पसली की हड्डियां मांस के नीचे से झलक उठीं। विंध्या बाबू को उत्तर मिल गया। बोले :

"और क्या करे ? सवेरे उठ कर कसरत किया कर। ज़रा अपनी उमर देख और अपना शरीर देख। एक एक हड्डी चमकती है। तेरी उमर में जब मैं था तो दो दो सौ डंड बैठक लगाता था। उठ, मुँह हाथ धो कर कसरत कर।"

एक बार तो बिंद्रा चुप रह गया परंतु था आख़िर विंध्या बाबू का ही बेटा। बोला, "तुम डंड बैठक लगाते थे तो घी दूध कितना खाते थे ? यहाँ तो घी आँख में डालने को भी नहीं मिलता और दूध के दर्शन सिर्फ चाय में होते हैं। बनास्पति खा कर और चाय पी कर कसरत कर के टी. बी. से थोड़े ही मरना है।"

बिंद्रा की बात ने विंध्या बाबू के मुँह पर ताला लगा दिया। वैसे तो कोई भी जवान आदमी कभी भी ठीक और मानने योग्य बात नहीं कहता परंतु बिंद्रा की बात मन में गड़ गई। विंध्या बाबू सारे दिन घी दूध सोचते रहे। यहाँ तक कि और रातों को जो दो चार घंटे नींद आ जाती थी उस रात वह भी नहीं आई। लगभग दो बजे अपनी पत्नी को पुकारा, "बिंद्रा की माँ !" कोई उत्तर नहीं मिला।

"विद्रा की मां !" उन्होंने फिर पुकारा।

"हूँ !"

"सो रही हो क्या ?"

"क्या है ?"

"विद्रा ठीक कहता था।"

"क्या ?"

"घर में घी दूध होना आवश्यक है।"

"हे मेरे राम ! यही समय है इस बात का ? सवेरे नहीं कर सकते यह बात ?"

"मुझे तो नींद नहीं आती।"

"लेकिन मुझे तो आ रही है। अब सोने दो।"

× × × ×

यह तो सर्वसम्मति से निश्चय हो गया कि घर में घी दूध होना चाहिए परंतु समस्या यह हुई कि कौन सा जानवर पाला जाए। वैसे तो जितने भी स्तनपायी जीव हैं वे सब दूध देते हैं और उन में से बहुतों का दूध मनुष्य प्रयोग करता है परंतु विंध्या बाबू के परिवार ने कुल तीन चार जानवरों पर ही विचार किया। याक, ऊँटनी और रेनडियर तो इसलिए छोड़ दिए गए कि उन के अनुकूल जलवायु उन के घर पर नहीं था और यद्यपि जानवरों में गधी के दूध का कंपोजीशन मनुष्य के दूध के कंपोजीशन के निकटतम है, फिर भी भावी नस्ल के विचार से उस पर विचार नहीं किया गया। रह गए बकरी, गाय और भैंस।

बकरी के पक्ष में सब से बड़े तर्क ये थे कि वह सस्ती होती है—खरीदने में और खिलानेपिलाने में और आवश्यकता पड़े तो खाने में भी (यद्यपि इस की संभावना नहीं थी क्योंकि विंध्या बाबू का परिवार शाकाहारी था) और फिर गांधीजी भी तो सदा बकरी का दूध पिया करते थे परंतु बकरी के विपक्ष में ये तर्क थे कि उस का

दूध कम होता है, उस में होक आती है और उस का दूध दही, मट्ठे तथा मक्खन के लिए विशेष उपयुक्त नहीं होता।

भैंस का दूध मात्रा में अधिक, गाढ़ा तथा शक्तिवर्द्धक होता है। परंतु उस से बुद्धि ठोस हो जाती है, शरीर भले ही बन जाए। इस के अतिरिक्त भैंस ख़रीदने और खिलाने में महंगी पड़ती है और उस का स्वभाव ज़िद्दी होता है जब तक पेट भर कर इच्छानुसार भोजन न मिल जाए वह दूध ही नहीं देती और यदि वह एक बार ठान ले कि दूध नहीं देना है तो आप थनों पर लटक भी जाइए—यह उपाय प्रयोग में लाने वाले बहुधा धूल में लोटते दृष्टिगत हुए हैं—परंतु एक बूंद भी दूध प्राप्त नहीं कर सकते।

गाय पर विचार करते समय पूरा परिवार गद्‌गद् हो गया। यह वह जानवर है जिसे पालने से आम के आम गुठलियों के दाम मिल जाएँ। अपेक्षाकृत सस्ती, देखने में सुंदर। दूध पियो तो शरीर स्वस्थ हो तथा बुद्धि तीक्ष्ण और प्रातःकाल उठ कर दर्शन पूजन करो और पंचगव्य का सेवन करो तो जीते जी स्वर्ग प्राप्त हो—मर कर तो ख़ैर गारंटी है ही।

सब प्रकार से विचार करने पर यही निश्चय हुआ कि गाय ख़रीदी जाए। परंतु निश्चय होना एक बात है और उसे कार्य रूप में परिणत करना दूसरी बात। आज कल इन दोनों में आपस में कोई संबंध नहीं रहा है और फिर विंध्या बाबू तो तीस वर्ष नौकरी कर चुके थे। 'सर्वोच्च प्राथमिकता' (Top Priority) की परची लगी हुई फाइलों में भी सप्ताहों की देर करना उनके बाएँ हाथ का खेल था।

अब प्रश्न यह उठा कि गाय कौन से रंग की ली जाए। कहा तो यह जाता है कि काले रंग की गाय का दूध सर्वाधिक गुणकारी होता है परंतु काली गाय सुंदर नहीं होती। सफ़ेद गाय सुंदर तो अवश्य लगती है परंतु उसे साफ़ रखने में कठिनाई होती है। सफ़ेद रंग पर गंदे दाग़ बड़ी जल्दी चमकते हैं और यदि उसे रोज नहलाने लगो और सर्दीजुकाम

हो जाए तो अलग आफ़त। इस के अतिरिक्त सफ़ेद गाय के दूध में इतने विटामिन---या कम से कम इतने गुण नहीं होते जितने रंगीन गाय के दूध में। अतः एक समझौता किया गया---लाल रंग की गाय ली जाए।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकारी पशुपालन विभाग और सैनिक डेरी फार्म को पत्र लिखे गए, जानवरों की मंडी की धूल छानी गई और कई मेलों के भी चक्कर लगे परंतु गाय नहीं ली गई। किसी के रंग का शेड ठीक होता तो सींग टेढ़े होते किसी के रंग और सींग ठीक होते तो पूँछ कटी मिलती। गाय आने में देर पर देर होती जा रही थी, उधर घर में बच्चों ने अपने अपने गिलास भी छाँट लिए थे कि कौन किस गिलास में दूध पिएगा। दूसरा कोई इस गिलास पर हाथ भी लगा देता था तो फ़ौजदारी हो जाती थी।

विंध्या बाबू की पत्नी बाजार से दूध गरम करने की कड़ाही और दूध जमाने की हाँडी भी ले आई थीं। रसोई के एक कोने में लोहे का छल्ला लगा दिया गया था और बढ़ई को आर्डर दे दिया गया था कि दही बिलोने के लिए एक मथानी बना दे---जल्दी। मक्खन रखने के लिए एक पत्थर का करवा ले लिया गया था।

आख़िर एक दिन विंध्या बाबू एक जानवर घर लाए। उनकी पत्नी, जिनकी आँखें कुछ कमज़ोर थीं, देख कर बोलीं, "यह क्या है?"

"तुम्हें दिखाई नहीं देता?"

"कुत्ता जैसा कुछ है।"

"पागल हुई हो? कुत्ता नहीं, बछिया है।"
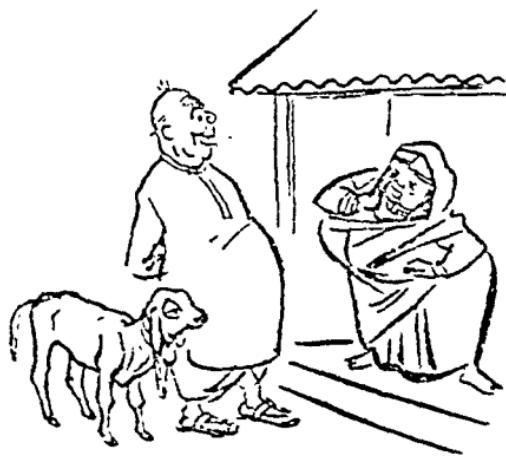
बच्चों ने गुस्से के मारे अपने अपने गिलासों को पटक पटक कर तोड़ दिया और यद्यपि उनकी दादी के मन में भी कुछ ऐसे ही विचार उठे थे—वे विंध्या बाबू के हाथ पैरों से संबंध रखते थे—परंतु उसने अपने विचारों और भावनाओं पर नियंत्रण किया और दूध, दही, मट्ठे आदि के बरतन गोदाम में रखवा दिए।

× × × ×

जब बोलचाल आरंभ हुई तो विंध्या बाबू ने समझाया, "तुम जानतीं नहीं, दूध के गुणों पर जानवर की ख़ूराक और उस के स्वास्थ्य का बड़ा भारी प्रभाव है। गाय ले आते तो पता नहीं उसकी क्या ख़ूराक थी, कैसा उसका स्वास्थ्य था। अब इस बछिया को अपने सामने पालेंगे तो इस बात का पूरा विश्वास रहेगा कि इसके दूध में विटामिन तथा शक्तिवर्धक तत्त्व उचित मात्रा में प्राप्त होंगे।"

बछिया तो आई परन्तु उसे रखा कहाँ जाए? घर के सदस्यों ने अपनी अपनी समझ से स्थान बताए परंतु विंध्या बाबू के विचार से गऊ माता जैसे सीधेसादे जीव को प्रथम तो बाँधने की ही कोई आवश्यकता नहीं थी और दूसरे यदि कहीं रखना ही है तो उसके लिए विशेष आयोजन की कोई आवश्यकता नहीं। आख़िर शराफ़त भी तो कोई चीज़ है दुनियाँ में! हम बछिया बहन के लिए इतना करेंगे तो क्या वह कहना भी नहीं मानेगी?

सो उन्होंने लगभग बारह वर्ग फ़ीट स्थान कोई बारह ही इंच ऊँचाई पर बँधी सुतली से घेर दिया और बछिया के लिए उसके अंदर चारा और पानी रख कर बोले, "देख कहीं जाना मत। चुपचाप यहीं पड़ी रहना।"

परंतु प्रतीत होता है बछिया उच्च कुल की नहीं थी। वह तो सवेरे अपने घेरे से ग़ायब थी। बड़ी खोज हुई, तब वह उसी जगह मिली जहाँ न मिलनी चाहिए थी : कांजी हाउस। क्रोध से विंध्या बाबू

तमतमा उठे। जो पैसे उन्होंने कांजी हाउस में दिए थे, वे उन्होंने बछिया की संध्या की ख़ूराक से काट लिए और बछिया को केवल पानी पी कर और अपने खूँटे की रस्सी चबा कर रात काटनी पड़ी। अगले दिन उस के लिए एक छोटा सा कटघरा बना दिया गया और उसे—कटघरे को —फूस से पाट दिया गया।

रहने का समुचित प्रबंध होने के पश्चात् विंध्या बाबू को बछिया के भोजन की चिंता हुई। इस चिंता को दूर करने के लिए वह रात दिन बड़ी बड़ी पुस्तकों में डूबे रहने लगे और बीच बीच में कुछ नोट भी करते जाते थे। एक दिन वह आँगन में बैठे हुए नित्य की भाँति पुस्तक में मग्न थे। सहसा उन्हें अपनी पत्नी की चिल्लाहट सुनाई पड़ी :

"हट! हट! अजी तुम भी बैठे हो इन मरी किताबों में मुंह छिपाए! देखते नहीं, बछिया ने सारी उर्द की दाल खा ली?"

"खाने क्यों नहीं देतीं उसे? उर्द की दाल में प्रोटीन की मात्रा बहुत होती है।"

"अजी आग लगे तुम्हारे प्रोटीन-पोटीन में। यहाँ नुकसान हो गया।"

"विंद्रा की माँ, यही तो तुम ग़लती करती हो। अजी हम तो आदमी हैं, जैसातैसा खा लेते हैं परंतु इस बछिया को तो उचित भोजन मिलना ही चाहिए। इसी के स्वास्थ्य पर हम सब का स्वास्थ्य निर्भर है। मैं चाहता हूँ कि इसका दूध औषधि से भी बढ़ कर गुणकारी हो।

लिए इसे संतुलित भोजन मिलना चाहिए अर्थात् इसके भोजन में
मिन, कार्बोहाइड्रेट यानी शर्करा वाले पदार्थ, प्रोटीन, खनिज तत्त्व
स्निग्ध पदार्थ उचित मात्रा में होने चाहिएँ। और ..."

"तुम तो सठिया गए हो। हमारे घर में भी बहुत से जानवर पले
: वहाँ कभी ..."

"तुम्हारे घर में तो चूहे और खटमलों के अलावा और कोई
र मैंने देखा नहीं।"

"देखो जी, अच्छा नहीं होगा जो मेरे घर के बारे में ऐसी
कीं!"

"अच्छा, अच्छा। मैं तो यही चाहता हूँ कि बछिया को ऐसा भोजन
जिससे इसका दूध अच्छा हो।"

× × × ×

छ दिन बाद बछिया को देख कर विंद्रा की माँ ने कहा, मैं ने
कहा यह बछिया दिन पर दिन दुबली क्यों हो रही है?"

"मुझे क्या पता?"

"तुम्हें नहीं तो और किसे पता होगा? तुम्हीं तो सवेरे से उसे ले
चराने निकल जाते हो।"

"लेकिन वह तो कुछ खाती ही नहीं।"

"खाती नहीं?"

"यही तो। बात यह है कि जंगल में जितना घासपात है सब के
दोष तो मैं जानता नहीं। जिन्हें मैं नहीं पहचानता उन्हें मैं नहीं
देता और जिन्हें मैं खिलाना चाहता हूँ उन्हें यह बछिया नहीं
ो। अभी परसों की ही बात है, यह बड़े जोर जोर से अपना कान
रही थी। मैंने सोचा इसके ख़ून में शायद कोई ख़राबी है।
लए इसे करेले की बेल तोड़ कर दी पर इसने खाई ही नहीं।"

"तो करेले की बेल तुम ने तोड़ी थी? हे मेरे राम!" कह कर
रा बाबू की पत्नी ने दोनों हाथ अपने सिर पर मार लिए। फिर

बोलीं, "मैं अपने जीते जी घर में यह गऊ हत्या नहीं होने दूँगी। कल से गाय मुहल्ले के और जानवरों के साथ चरने जाएगी।"

"लेकिन फिर इसका भोजन संतुलित कहाँ रहेगा ? कहीं विटामिन की कमी रह गई या प्रोटीन ही कम हो गए तो फिर दूध में गुण कहाँ से आएँगे ?"

"तुम्हें जो इटामीन विटामीन खिलाने हों बाद में खिलाना, बछिया तुम्हारे साथ चरने नहीं जाएगी।"

× × × ×

विंध्या बाबू चुप हो गए। परंतु अगले दिन से ठीक समय पर सब्ज़ियाँ ग़ायब हो जातीं, घी तेल के डिब्बे खाली मिलते। कभी लोग हँसते, कभी झगड़ा करते। एक दिन विंध्या बाबू का पौत्र चुन्नू बछिया के सामने कुछ दूरी पर बिल्ली के बच्चे से खेल रहा था। बच्चा बार बार बछिया की ओर दौड़ रहा था और बछिया कान खड़े किए सशंक दृष्टि से एकटक उसी ओर देख रही थी। विंध्या बाबू कई बार उस ओर गए परंतु बछिया ने उनकी ओर नहीं देखा। वह घबराए हुए आए और बोले:

"अजी विद्रा की माँ, मैं ने कहा सुनती हो ? तुम रोज़ मेरी हँसी उड़ाती थीं, अब देख लो। बछिया को विटामिन ए की कमी हो गई है और शायद थोड़ी कमी विटामिन बी की भी है। उसे तो अब दिखाई ही नहीं देता।"

अगले दिन से बछिया के लिए पके टमाटर, गाजर और गाजर का हलुआ आने लगा। विंध्या बाबू तो उसे मछली का तेल पिलाने पर उतारू थे वह तो, खैर, उनकी पत्नी ने मना कर दिया।

इसी प्रकार दिन बीतते गए और बछिया जवान हुई और उसके भावी वरों ने ज़ोर शोर से कोर्टशिप आरंभ कर दी। भावी दूल्हों को विंध्या बाबू बड़ी बारीकी से देखते और सभी में उन्हें कुछ न कुछ कमी लगी। किसी का डीलडौल अच्छा नहीं होता, तो किसी का रंग। जिसमें

ये बातें ठीक मिलतीं उसके सींग उनकी इच्छानुकूल दिशामें मुड़े न होते। एकआध इसलिये रिजेक्ट हुए कि उन्होंने विंध्या बाबू की—जो डंडा लिए खड़े रहते थे—और क्रुद्ध दृष्टि से देखकर फुंकार भरी थी। विंध्या बाबू स्वयं भी दूल्हे की खोज में थे। अंत में उन्हें गवर्नमेंट डेरी फार्म का साँड़ पसंद आया और बछिया की उसके साथ एक दिन मित्रता करा दी गई।

उस दिन से विंध्या बाबू बछिया का और भी ध्यान रखने लगे।

बिंद्रा की माँ को पान खाने की आदत थी। इसके लिए घर पर एक बड़ा सा पानदान था। एक दिन वह बोलीं, "अरे बिंद्रा, इस चुन्नू को मना कर दे। यह मेरे पानदान से पान चुरा चुरा कर खाता है। कई दिन से देख रही हूँ पान ग़ायब हो जाते हैं। कल ही सौ पान मँगाए थे आज दस भी नहीं बचे। मैं इसे पीटूँगी।"

"दादी, मैंने नहीं लिए पान।" चुन्नू ने सफ़ाई दी।

"तो पानदान खा गया पान?"

"दादा जी ने लिए हैं।"

"झूठ बोलता है। उनके तो दाँत ही नहीं हैं, पान ले कर वह क्या करेंगे?"

"बछिया को खिलाते हैं।" चुन्नू ने कहा।

विंध्या बाबू ने सफ़ाई दी : "शरीर स्वस्थ रखने के लिए कैल्सियम अत्यंत आवश्यक है। इसकी कमी से बच्चों की हड्डियाँ मुलायम पड़ जाती हैं, टाँगें कमान जैसी हो जाती हैं और घुटने टेढ़े। गंडमाला तथा दाँतों के रोग हो जाते हैं। गर्भवती के लिए तो कैल्सियम और भी आवश्यक है क्योंकि उसी से गर्भ के बच्चे को यह प्राप्त होता है। फ़ास्फ़ोरस को शरीर तत्त्व में मिलाने के लिए यह आवश्यक है। अब बताओ बछिया को कैल्सियम कैसे देता? ऊपर से पुताई करने से तो काम चलता नहीं और न वह सूखा खाया जाता है। इसलिए मैं ने पान में लगा कर खिला दिया। वह बेचारी तो मना कर रही थी, खाती ही नहीं थी, मैं ने बड़ी खुशामद करके खिलाया और अब तो मैं इसे विटामिन डी की गोलियाँ खिलाने वाला हूँ क्योंकि कैल्सियम और फ़ास्फ़ोरस जज़्ब करने के लिए विटामिन डी लेना आवश्यक है। इससे हड्डियाँ और दाँत मज़बूत रहते हैं।"

× × × ×

इस व्याख्यान का परिवार के सदस्यों पर अलग अलग प्रभाव पड़ा। विंद्रा अपने लिए बादाम लाया था। कहीं विंध्या बाबू गाय को बादाम न खिला डालें, इस डर से वह लगभग डेढ़ पाव बादाम एक साथ ही कच्चे खा गया। एक सप्ताह बाद उसकी भूख बिलकुल बंद हो गई और आँखें पीली पड़ गईं। डाक्टरों ने कमलबाय बताया। और वह तो कहो कि बच ही गया नहीं तो . . .

विंद्रा की माँ, जो आँखों की कमज़ोरी के कारण आँवले का मुरब्बा खाया करती थीं, अलग चिंता में पड़ गईं। उन्होंने कुछ आँवले खाए, और कुछ पीस कर सर पर रख लिए। मीठे के लालच में इतनी चींटियाँ उनके सिर और मुँह पर चढ़ गईं कि रात भर बेचारी अपना सिर तथा मुँह पीटती रहीं। चीनी जमने के कारण उन के बाल इस बुरी तरह जकड़ गए कि बहुत से तो जड़ से काटने पड़े।

आखिर एक दिन गाय ब्याई और उस ने एक बछिया दी। घर में खुशी का क्या पूछना! विंध्या बाबू की पत्नी ने दूध, दही व मट्ठे के बरतन गोदाम से निकाले और बच्चों ने अपने टूटे गिलास ठोकपीट और टांकी लगवा कर सीधे किए। यद्यपि आरंभ के एक दो दिन का दूध तो किसी के काम आने वाला नहीं था--बच्चों को खीस भी तीन दिन से पहले नहीं मिलनी थी फिर भी जिस दिन पहलेपहल गाय दुही जाने वाली थी, घर में बड़ा उत्साह था।

यद्यपि नियमानुसार यह काम बिंद्रा की माँ का था परंतु विंध्या बाबू को किसी पर विश्वास नहीं था। क्या पता वह सफ़ाई करे या न करे, या फिर कहीं बच्चे के हिस्से का भी दूध न निकाल ले। इसलिए विंध्या बाबू ने स्वयं ही धार निकालना उचित समझा। वह एक नया बना हुआ छोटा सा लकड़ी का स्टूल और पीतल की नई बाल्टी ले आए और आसन जमा कर बैठे। परिवार के अन्य सदस्यों ने भी रंगमंच के चारों ओर अपने अपने स्थान ले लिए। हज़ार मना करने पर भी बच्चे चले आए।

विंध्या बाबू ने गाय के थनों को पहले डिटौल के पानी से धोया फिर सादे पानी से। उस के बाद जैसे ही उन्होंने गाय का थन दबाया और टीं से दूध की धार खाली बाल्टी के पेंदे पर बोली, कई बातें एक साथ हुईं।

उत्सव मनाने का चुन्नू का विचार अपना ही था। पहली बार घर में गाय दुही जाने के उपलक्ष्य में बाजा बजना ही चाहिए--यह सोच कर चुन्नू कागज़ का लाउडस्पीकर लगी हुई पींपीं ले आया था और पहली धार पड़ते ही पूरा ज़ोर लगा कर बजा दी।

शायद गाय का थन भी ज़ोर से दब गया था। गाय बड़े ज़ोर से रँभाई और उस ने अपनी पिछली दोनों टाँगें बड़े ज़ोर से हवा में उछालीं और विंध्या बाबू ने खुशी के मारे--या किसी और कारण से--नटों की

भाँति हवा में और ज़मीन पर तीन बार कलाबाज़ियाँ खाईं और चुप पड़े रहे ।

गाय की लात से उड़ कर बाल्टी विंद्रा की माँ की टाँग पर लगी और वह हाय कर के बैठ रहीं । बच्चे रोतेचिल्लाते भागे, ऊपर से चुन्नू की माँ ने अच्छी तरह उन की धुलाई की ।

अब विंध्या बाबू के घर ग्वाला दूध दे जाता है ।
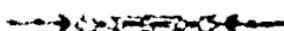
श्रीमती लीला बन्द्योपाध्याय

ठीक आठ बजे 'स्विस मेड' अलार्म घड़ी ने बड़े जोर से टनटनाना आरम्भ कर दिया। श्रीमती बन्द्योपाध्याय अपने विस्तर पर कुनमुनाई और सिर को तकिये में और गहरा गड़ाने का प्रयत्न किया परंतु अलार्म बजता ही जा रहा था। उसने हाथ बढ़ा कर अलार्म बन्द किया। लेटे-लेटे दो अँगड़ाई और चार उबासियाँ गले से विभिन्न आवाजें निकाल कर लीं और कराहते हुए पलंग पर बैठ गई। एक आध मिनट बाद उठकर सामने लगी ड्रेसिंग टेबिल के सामने रक्खी कुर्सी पर बैठकर अपना चेहरा दर्पण में देखा, चेहरा ऐसा हो रहा था जैसे मुरादाबादी लोटा

जिसपर से क़लई थोड़ी-थोड़ी उतर चली हो। लीला ने पफ़ द्वारा पाउडर के दो एक थपके दे कर चेहरे की क़लई ठीक की और अपनी पैंतीस वर्ष की आवाज़ को सत्रह वर्ष की बनाकर आवाज़ दी, 'बैरा आ ...आ....।'

बैरा चाय ले कर आया। लीला ने पूछा, "आज अख़बार आए ?"

'जी हां।'

'कितने हैं ?'

'ग्यारह।'

'ले आओ।'

बैरा अखबार ले आया। चाय पीते-पीते लीला अखबारों के पन्ने उलटने लगी और उस पृष्ठ को खोलकर रखने लगी जिसमें 'कलकत्ता समाचार' छपा था। पत्र बंगला और अँग्रेज़ी के थे।

एक बंगला पत्र 'दैनिक लोक व्यापार' देख कर लीला के नथुने फूल उठे और मुख तमतमा गया और उसके मुख से अस्फुट स्वर में फुंकार निकली, 'इस छोटे आदमी की यह मजाल !'

लीला के पति प्रोफ़ेसर शैलेन्द्र वन्द्योपाध्याय, जो उसी समय कमरे में आए थे, बोले, 'क्या हुआ ?'

'अकृतज्ञ, छोटो लोक।'

'अरे, मेरे ऊपर क्यों गर्म होती हो, मैंने क्या किया ?'

'तुम्हें नहीं, मैं इस 'लोक व्यापार' के सम्पादक को कह रही हूं।'

'क्या अपराध हुआ उससे ?'

'अपराध?' अँग्रेज़ी के अखबारों तक ने तो कल के उत्सव की रिपोर्ट के साथ मेरी फ़ोटो छापी है और मेरा परिचय दिया है, यह केवल रिपोर्ट देकर रह गया है।'

'तो उसने रिपोर्ट देकर पाठकों के प्रति अपना कर्तव्य निबाहा है। पाठक उत्सव के विषय में जानना चाहते हैं वह उसने लिख दिया।'

'पाठकों के प्रति कर्तव्य ! और मेरे प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं ?'

श्रीमती लीला वन्द्योपाध्याय

ठीक आठ वजे 'स्विस मेड' अलार्म घड़ी ने वड़े जोर से टनटनाना आरम्भ कर दिया। श्रीमती वन्द्योपाध्याय अपने विस्तर पर कुनमुनाईं और सिर को तकिये में और गहरा गड़ाने का प्रयत्न किया परंतु अलार्म वजता ही जा रहा था। उसने हाथ वढ़ा कर अलार्म वन्द किया। लेटे-लेटे दो अँगड़ाई और चार उवासियाँ गले से विभिन्न आवाजें निकाल कर लीं और कराहते हुए पलंग पर वैठ गई। एक आध मिनट वाद उठकर सामने लगी ड्रेसिंग टेबिल के सामने रक्खी कुर्सी पर वैठकर अपना चेहरा दर्पण में देखा, चेहरा ऐसा हो रहा था जैसे मुरादावादी लोटा

जिसपर से क़लई थोड़ी-थोड़ी उतर चली हो। लीला ने पफ़ द्वारा पाउडर के दो एक थपके दे कर चेहरे की क़लई ठीक की और अपनी पेंतीस वर्ष की आवाज़ को सत्रह वर्ष की बनाकर आवाज दी, 'बैरा आ ...आ....।'

बैरा चाय ले कर आया। लीला ने पूछा, "आज अख़बार आए ?"

'जी हाँ।'

'कितने हैं ?'

'ग्यारह।'

'ले आओ।'

बैरा अख़बार ले आया। चाय पीते-पीते लीला अख़बारों के पन्ने उलटने लगी और उस पृष्ठ को खोलकर रखने लगी जिसमें 'कलकत्ता समाचार' छपा था। पत्र बँगला और अँग्रेज़ी के थे।

एक बँगला पत्र 'दैनिक लोक व्यापार' देख कर लीला के नथुने फूल उठे और मुख तमतमा गया और उसके मुख से अस्फुट स्वर में फुंकार निकली, 'इस छोटे आदमी की यह मजाल !'

लीला के पति प्रोफ़ेसर शैलेन्द्र वन्द्योपाध्याय, जो उसी समय कमरे में आए थे, बोले, 'क्या हुआ ?'

'अकृतज्ञ, छोटो लोक।'

'अरे, मेरे ऊपर क्यों गर्म होती हो, मैंने क्या किया ?'

'तुम्हें नहीं, मैं इस 'लोक व्यापार' के सम्पादक को कह रही हूँ।'

'क्या अपराध हुआ उससे ?'

'अपराध?' अँग्रेज़ी के अख़बारों तक ने तो कल के उत्सव की रिपोर्ट के साथ मेरी फ़ोटो छापी है और मेरा परिचय दिया है, यह केवल रिपोर्ट देकर रह गया है।'

'तो उसने रिपोर्ट देकर पाठकों के प्रति अपना कर्त्तव्य निबाहा है। पाठक उत्सव के विषय में जानना चाहते हैं वह उसने लिख दिया।'

'पाठकों के प्रति कर्त्तव्य ! और मेरे प्रति उसका कोई कर्त्तव्य नहीं ?'

'तो क्या मैं पैंतीस वर्ष की दिखाई देती हूँ ?'

'नहीं, दिखाई तो नहीं देतीं....हाँ सुनो, तुम्हारी प्रशंसा में और भी बहुत कुछ छपा है...........'

'देखो एक यह रिपोर्ट है। इससे मैं केवल एक बार कुछ घण्टों के लिए प्रिन्सेज़ होटल में मिली थी, जब हमने अकाल पीड़ित व्यक्तियों की सहायतार्थ किये जाने वाले आयोजन के प्रस्तावित सभापति को डिनर-डान्स पर बुलाया था। देखो, इसने क़ितनी अच्छी रिपोर्ट दी है और फ़ोटो भी छापी है।' लीला ने कहा।

'यह तुम्हारा कौन-सा फ़ोटो है ?' प्रोफ़ेसर ने पूछा।

'वही तो पिछले साल वाला।'

प्रोफ़ेसर कुछ देर फ़ोटो की ओर देखते रहे फिर कहा, "अरे यह तो वही चित्र मालूम होता है, जो विवाह के दो तीन वर्ष बाद और आज से पाँच छः वर्ष पूर्व तुमने खिचवाया था....इस में तुम निश्चय ही पच्चीस वर्ष से अधिक दिखाई नहीं देतीं, डियर।'

लीला ने प्रोफ़ेसर को ऊँची सोसायटी के एटीकेट की बहुत-सी बातें सिखा दी हैं, जैसे प्रेम के शब्द अँग्रेज़ी में बोलना, पत्नी को कार अथवा सीढ़ी से अपनी बाँह के सहारे उतारना, बॉल-रूम नाच सिखाना और जब कोई अन्य व्यक्ति आपकी पत्नी को नाचने के लिए ले जाना चाहे तो मुस्करा कर अपनी अनुमति देना, पत्नी के लौटने के अनियमित समय की ओर से आँखें मूँदे और लोकापवाद की ओर से कान में तेल डाले पड़े रहना, आदि।

बड़ी लड़की छः मास के बच्चे को ले आई। वह रो रहा था। लीला बोली, 'अरी मीना, इसे आया को दे दे न।'

'माँ, वह भूखा रो रहा है।'

'अरे तभी तो कहती हूँ कि आया को दे दे। वह दूध पिला देगी। जा जल्दी, मुझे अभी नहाकर एक मीटिंग में जाना है।'

लीला गुस्लख़ाने में गई। कपड़े उतार कर उसने अपने शरीर की ओर देख कर ठंडी सी साँस ली। समाज में, जिस समाज की वह अब तक साम्राज्ञी थी, एक प्रतिद्वंदी उत्पन्न हो गया था, अनुभा बोस के रूप में। यह ठीक है कि अनुभा का रंग लीला के रंग की भाँति साफ़ नहीं था परन्तु अनुभा लीला से छोटी थी और अनुभा के शरीर के उभार कहीं अधिक आकर्षक थे और वह उससे अधिक पढ़ी-लिखी तथा कार्यशील थी। लीला ने सामने की आलमारी से एक शीशी उठाई जिस पर लिखा था–'मेसोटोन–ढली हुई छातियों को उठाने तथा कड़ी करने की दवा।'

लीला चौरंगी स्थित महिला कांग्रेस के ऑफ़िस में गई, डाक देखी, फिर तीन चार स्थान पर टेलीफ़ोन किया। कई पुरुष तथा स्त्रियाँ मिलने के लिए आए, उनसे मुलाक़ात की। बातचीत के साथ थोड़ा बहुत चाय पानी चलता ही रहा। थोड़ी देर बाद एक गर्ल्स कॉलेज की प्रधान अध्यापिका अपनी कुछ सहकारी अध्यापिकाओं के साथ आ गई। कॉलेज को एक लायब्रेरी की अत्यन्त आवश्यकता थी। स्कूल से कॉलेज बना था। मैनेजिंग कमेटी के पास इतना रुपया नहीं था कि कॉलेज को लायब्रेरी के योग्य रुपया दे सके। पहले और आवश्यक कार्य, जैसे कॉलेज के मैनेजर (जो कि मैनेजिंग कमेटी के प्रेसीडेंट के दामाद थे) का बँगला बनाना, हो रहा था। बच्चियों की शिक्षा तो इतने दिन रुक नहीं सकती। एक जलसा करके रुपया इकट्ठा करना आवश्यक था। एक आदमी, जिसने कपड़े के ब्लैक मार्केट और घुड़दौड़ में लाखों रुपया बनाया था, काफ़ी मोटी रक़म देने को तैयार था, परन्तु उससे बात करने के लिए कोई ढंग का आदमी चाहिए था और मिसेज़ बन्द्योपाध्याय से बढ़ कर....इत्यादि।

लीला ने उस सेठ को फ़ोन किया। कुछ घरेलू कारणों से सेठ ने लीला को अपने घर अथवा ऑफ़िस में बुलाने की अपेक्षा स्वयं लीला के पास जाकर मिलना अधिक अच्छा समझा। बात चीत आरम्भ हुई और

जब कुछ गर्माहट आने लगी तभी डेढ़ बज गया। लीला ने कहा कि उसके लंच का समय हो गया था और उसे लंच के लिए घर जाना पड़ेगा, यद्यपि इतनी महत्वपूर्ण बातचीत बीच में ही छोड़ कर जाने से उसे अत्यन्त दुःख होगा।

'मेरा विचार है मिसेज बैनर्जी, कि आप यहीं लंच कर लें और लंच पर भी बातचीत जारी रहे।' सेठ ने कहा,

'लेकिन....' लीला ने प्रतिवाद करना चाहा।

'यदि आपको विशेष असुविधा न हो तो.......'

'नहीं, असुविधा कुछ नहीं, फिर यह काम भी तो करना ही है, मैं घर टेलीफ़ोन कर देती हूँ।'

और फिर उस दिन भी और बहुत से दिनों की भाँति प्रोफ़ेसर बैनर्जी और उनके बच्चों को नौकर के हाथ का बनाया हुआ भोजन लीला की अनुपस्थिति में करना पड़ा। प्रोफ़ेसर बन्द्योपाध्याय के कॉलेज के घंटे एक बजे से पहले पहले ही समाप्त हो जाते थे और उसके बाद बच्चों तथा ससुराल से मिले नौकरों सहित फर्निश्ड घरबार तथा बच्चों की देखभाल नौकर तथा प्रोफ़ेसर मिलजुल कर करते थे।

ग्रेट ईस्टर्न होटल के दोपहर में भी बिजली के प्रकाश से उज्ज्वलित, बड़े तथा शानदार डाइनिंग हॉल में लंच हुआ। लंच से पहले ड्रिंक्स का प्रस्ताव लीला ने 'इस समय इच्छा नहीं है', कह कर टाल दिया, परन्तु काफ़ी बातचीत के बाद और शाम को आठ बजे 'प्रिन्सेज़' में मिलने का वादा करके जब दोनों एक दूसरे से बिदा हुए तो उन्होंने एक दूसरे को विश्वास दिलाया कि वे एक दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए थे।

शाम को चार बजे लीला घर लौटी। नौकर को चाय लाने का आदेश दिया और स्वयं गुस्लख़ाने में चली गई। साढ़े पाँच तक चाय समाप्त करके लीला सजने सँवरने में लग गई। कॉस्मेटिक्स के खोल से आवृत लीला जब पौने आठ बजे 'प्रिन्सेज़' के लिए चली तो एक बार

इन्द्रासन भी डोल गया होगा। और जब लीला उस नये बने हुए सेठ की बाहों में लिपटी आर्केस्ट्रा की टचून पर वाल्ज़ कर रही थी, घर पर गोद का बच्चा नींद से एकाएक चौंक कर जाग गया और माँ-माँ पुकार-कर चिल्लाने लगा। प्रोफ़ेसर बैनर्जी थोड़ी देर बच्चे को कंधे से लगाए थपकियाँ देते रहे, फिर सुला दिया।

लायब्रेरी के काम में लीला इतनी व्यस्त हुई कि महिला काँग्रेस, घर-बार और अपने आप को भी भूल गई। सेठ रोज़ नयी-नयी योजनाओं पर विचार करता, बड़ी-बड़ी पार्टी और भोज देता, परन्तु पैसा निकालने का नाम नहीं लेता था। उधर महिला काँग्रेस ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में देने के लिए गत वर्ष में की गई महत्वपूर्ण बातों में अमुक महिला कॉलेज के लिए एक सुन्दर तथा आधुनिक लायब्रेरी खुलवाना, घटना के पहले ही सम्मिलित कर लिया था। इस बात का यथेष्ट प्रचार भी हो चुका था--ज़ुबानी-परन्तु महिला काँग्रेस का वार्षिक चुनाव सिर पर आ गया, अधिवेशन की तिथि निश्चित हो गई और सेठ का रुपया देने का मूड नहीं आया। यह लीला की अयोग्यता समझी गई।

वार्षिक रिपोर्ट में से लायब्रेरी का प्रसंग काटना पड़ा। चुनाव में लीला हार गई। अनुभा बोस नई प्रेसीडेण्ट बनी। वर्ष में उसकी सफल-ताएँ अनेक थीं, जिनमें प्रमुख शरणार्थी शिक्षा केन्द्र, कॉलेजस्ट्रीट की रात्रि पाठशाला, टचुबरकुलोसिस चैरिटी फ़ंड, वेरायटी शो आदि थे। लीला ने सोचा, चलो सेठ तो अब भी उसके हाथ ही में है। वह प्रेसीडेंट नहीं बनी, तो लायब्रेरी भी नहीं बनेगी, परन्तु भगवान की पत्नी के साथ

खेलने वाला सेठ मानव-पत्नी लीला की क्या चिन्ता करता ? सहसा उसने रुपया देने का निश्चय कर लिया। चूँकि महिला काँग्रेस की ओर से बातचीत आरम्भ हुई थी, उसी के तत्वावधान में एक वेरायटी शो हुआ जिसका प्रेसीडेण्ट सेठ को बनाया गया। गवर्नर प्रधान अतिथि थे। महिला काँग्रेस की प्रेसीडेण्ट अनुभा बोस अतिथियों का स्वागत कर रही थी। भूतपूर्व प्रेसीडेण्ट श्रीमती लीला बन्द्योपाध्याय भी उत्सव की शोभा बढ़ा रही थीं। सदा की ही भाँति लीला देर से घर लौटी, जबकि बच्चे सो चुके थे।

सवेरे के समाचार-पत्रों में महिला काँग्रेस की उत्साही प्रधान कुमारी अनुभा बोस की सचित्र जीवनी छपी थी। कुमारी अनुभा बोस जिनके अथक प्रयत्नों द्वारा अमुक महिला कॉलेज को दानवीर सेठ ने पचास हज़ार रुपये का दान लायब्रेरी बनाने के लिए दिया........

गोद वाला बच्चा जाग कर चिल्लाने लगा। प्रोफ़ेसर शैलेन्द्र बन्द्योपाध्याय ने बच्चे को उठा लिया परन्तु उसका रोना जारी रहा। लीला ने बच्चे को लेने के लिए हाथ बढ़ाया तो वह और भी ज़ोर से चिल्लाने लगा। आया दौड़ती हुई आई और प्रोफ़ेसर से बच्चे को ले लिया। आया की गोद में जाते ही बच्चा चुप हो गया और सुबकने लगा।

तराजू और बट्टे

मेरे ताऊजी अपने जीवन के सत्तर वर्षों में से अन्तिम बीस वर्षों में नित्य-प्रति ब्राह्म मुहूर्त में 'चलो, हे साधो, चलो, हे संतो, श्री गंगासागर नहाइए' भजन गाते रहे, परंतु इतने पर भी जब कोई साधु-संत उन्हें गंगासागर नहलाने के लिए ले जाने नहीं आया, तो उन्होंने पिताजी की शरण ली। फलस्वरूप राशविहारी एवेन्यू पोस्ट आफ़िस, कलकत्ता २९ की डिलिवरी की मोहर लगा हुआ, पिताजी का पत्र मुझे मिला, जिसकी भूमिका में उन्होंने लिखा था कि धर्म संसार में सबसे बड़ी वस्तु है और हमारे देश में सदा से ही धर्मपालन को मनुष्य के तुच्छ जीवन से अधिक महत्त्व दिया गया है, और हमारे देशवासियों में भी जिनके ऊपर धर्म का सब कुछ भार है, वे हम लोग अर्थात् ब्राह्मण ही हैं, यह ब्राह्मणों के धर्म का ही प्रताप है कि अब भी सूर्य अपने टाइम पर निकलता और डूबता है, पृथ्वी अपनी धुरी पर ही घूमती है, आदि, जब-जब देश में ब्राह्मणों की मान-मर्यादा तथा अधिकारों पर आघात होते हैं संसार में भूचाल आते हैं, नदियां अपने रास्ते बदल देती हैं, अकाल पड़ते हैं, जहाज डूब जाते हैं या गिर जाते हैं।

भूमिका के पश्चात् पिताजी ने ताऊजी की गंगासागर स्नान की अभिलाषा का संक्षिप्त इतिहास दिया था कि किस प्रकार बचपन से ही जब से उन्होंने राजा सगर तथा उसके अगणित पुत्रों के कपिल मुनि के शापस्वरूप भस्म होने तथा बाद में सगर के वंशज भगीरथ द्वारा गंगाजी को महादेवजी की जटा के रास्ते पृथ्वी पर अवतरित करके सगर तथा उसके पुत्रों के उद्धार होने की कहानी पढ़ी थी। उनके मन में उस पवित्र स्थान को देखने की अभिलाषा थी, जहाँ पर यह अपूर्व घटना घटी थी--यानी जहाँ गंगा समुद्र में मिलती है। मैं, एक तो कलकत्ते में होने के कारण, दूसरे, सरकारी अफ़सर होने के नाते बड़ी सरलता से उनकी इस इच्छा-पूर्ति में सहायक बन सकता हूँ।

अंत में लिखा था कि जो धर्म कार्य में सहायता करता है उसका पुण्य धर्म करनेवाले से कम नहीं होता, क्योंकि इस व्यापार में, पिताजी के अनुसार, ताऊजी की अपेक्षा मेरा इहलोक और परलोक सुधरने की अधिक संभावना थी। मेरा इस कार्य में सहयोग वांछित ही नहीं, आवश्यक भी था।

उचित तिथि तथा समय पर ताऊजी ताईजी सहित कलकत्ता पधारे। ताईजी को साथ लाने के कई कारण थे। एक कारण तो धार्मिक ही था : विवाह मंत्रों के अनुसार ताऊजी के प्रत्येक धार्मिक कृत्य में ताईजी का पचास परसेंट भाग था। स्वर्ग में पुण्य का बँटवारा करते समय, पृथ्वी की चीजों के बँटवारे की तरह झगड़े, गालीगलौज आदि की नौबत न आए, इसलिए ताईजी साथ ही आ गई थीं। दूसरे, यह युगल यात्रा उनके सुपुत्रों तथा सुपुत्रवधुओं के व्यवहार की प्रतिक्रिया भी थी। बूढ़ों का कहना था कि जब ये कल के छोकरे अपनी औरतों को साथ - साथ नचाते फिरते हैं, तो उन्होंने ही क्या पाप किया है। कुछ भी हो, सारांश यह है कि मैं दफ़्तर में तीन दिन की छुट्टी का प्रार्थनापत्र दे, जहाज की तीन नीची श्रेणी के टिकट--क्योंकि ऊँची श्रेणी के टिकट संख्या में

बहुत कम होते हैं—खरीदकर एक दिन सवेरे छः बजे ताऊजी और ताईजी सहित हुगली के किनारे बने उस घाट के फाटक के बाहर खड़ा हो गया, जहाँ से जहाज छूटनेवाला था।

पुण्यार्थियों की भीड़ का क्या कहना! कहना संभव नहीं, वह तो देखने से ही संबंध रखती है, कुछ अनुमान इस प्रकार लगाया जा सकता है कि भीड़ के बीच में फँस जानेवाले कुछ बूढ़े स्त्री पुरुष पुण्य लाभ करने के लिए कलकत्ते से अस्सी मील दूर स्थित गंगासागर तक पहुँचने की देर सहन न कर सके और उस गेट के बाहर उस अपार जनसमूह को चीखता-चिल्लाता, धक्कामुक्की करता छोड़, अपने बनानेवाले के सामने अपने धर्म का लेखाजोखा समझने चले गए। उनकी ऐहिक लीला की इति अखबारों की इन पंक्तियों से हो गई—'कल अमुक घाट के सामने गंगासागर यात्रियों की भीड़ में कुचले जाकर सात यात्रियों की मृत्यु हो गई।'

जहाज क्या था, जूट तथा जानवर ढोनेवाली पाँच गहरी नावों के बीच एक छोटा सा स्टीमर फँसा दिया गया था, जो नावों को खींचकर ले जानेवाला था। जो लोग पहले पहुँचे उन्होंने ऊपर डेक पर अपने बिस्तर खूब फैला-फैलाकर लगा लिए और खाने-पीने की पोटलियाँ निकालकर बैठ गए। दूसरे नम्बर पर आनेवाले लोग डेक के नीचे होल्ड के अँधेरे में टटोलकर चलते हुए, एक दूसरे से टकराते, चिल्लाते, घुड़कियाँ सुनते सुनाते अपना स्थान बनाने लगे—कोई सोने को, और जिन्हें जगह नहीं मिली वे उकड़ू बैठने का।

नावों के जरा सा हिलते ही 'बोल गंगा माई की जय!' का गगन-भेदी नारा लगता, परन्तु नावें आगे न बढ़तीं। अंत में एक विशेष जोर के नारे के शब्द से खीझकर स्टीमर ने जोर से भोंपू की आवाज की और झक-झक करता हुआ घाट से आगे बढ़ा। फिर तो जो जय के नारे लगने आरंभ हुए, उनका मुझे पता नहीं, क्योंकि मैंने अपने कानों में उँगलियाँ

डाल ली थीं और आध घंटे बाद निकालीं। परंतु तब भी यदाकदा लगते हुए नारों को सुनकर विचार हुआ कि तेंतीस करोड़ अट्ठासी हज़ार देवताओं में से थोड़े से अभागे ही ऐसे बचे होंगे जिनकी जय नहीं बुली होगी।

जय समाप्त हुई तो स्त्रियों ने सहगान (कोरस) गाने आरंभ किए। इस संबंध में मैं अधिक न कहकर इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि उस समय मेरी एकमात्र अभिलाषा यह थी कि काश ड्राइंग रूम में सोफ़े पर बीस वर्ष बैठकर लोक गीत और ग्राम्य गीतों के संकलन प्रकाशित करनेवाले संग्रहकों को मैं उस जहाज़ में पाँच मिनट बैठा सकता। उस पाँच मिनट में ही यदि वे लोक गीत संग्रह करने की अपेक्षा घास खोदना अच्छा न समझने लगते, तो जो झूठे की सज़ा वह मेरी सज़ा।

थोड़ी देर तो मैं चारों ओर के शोरशराबे, गंदगी और बदबू से कुढ़ता रहा, फिर मैंने सोचा कि यदि यों ही कुढ़ता रहा, तो मेरी लाश ही घर पहुँचेगी ; और कुछ ऐसे लोगों की, जिनका लाभ मेरे सरकारी पद के कारण उतना नहीं हुआ जितना वे चाहते थे, इच्छा के बावजूद मैं नहीं चाहता था कि मैं इस प्रकार सहसा पब्लिक सर्कुलेशन से उठा लिया जाऊँ। सो मैंने दार्शनिक शांति को अपनाया और अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

दार्शनिक मूड में तो आ ही गया था, सहसा मुझे पिताजी के कथन की सत्यता का भान हुआ। उनका कहना था—'धर्म की बेल सदा हरी।' तो मुझे उस तथाकथित धर्म की बेल की हरियाली दिखाई दे रही थी। चारों ओर अधिकांश लोग ऐसे थे जो बहुत ही ग़रीब प्रतीत होते थे। बहुत थोड़े ऐसे थे जिनके शरीर पर सब कपड़े साबुत थे और बहुत से किसी न किसी रोग के रोगी थे। उधर एक दमे का बीमार था, इधर गठिया से पीड़ित एक बुढ़िया, कुछ बंगालिनें थीं जो ऐसी दिखाई देती थीं जैसे महीनों की भूखी हों। मैंने सोचा कि जब तक लोग अपनी या दूसरों

को कमाई अपने ऊपर नहीं लगाएँगे, धर्म की बेल भूख, बीमारी और कमी के रूप में हरी रहेगी।

धर्म बेल की एक कोपल उधर थी जिधर जहाज पर ठेके में ली हुई दुकान का मालिक आधा प्याला चाय तीन आने में, कलकत्ते से एक पैसे में लिया हुआ केला छः पैसे में, और जहाज हिलने के कारण चक्कर से पीड़ित रोगियों को दो पैसे का संतरा पहले दो आने, फिर तीन आने और अंत में चार आने में बेच रहा था।

धर्म बेल की तीसरी शाखा जहाज के डाक्टर के सिर पर अंकुरित हुई थी––उसके पुण्य कार्य में सहायता के उपलक्ष्य में––जो चक्कर से पीड़ित लोगों को चीनी घोलकर पीने या कोमोला लेबू (संतरा) खाने को कह रहा था, परंतु जिसके घर की स्त्रियाँ एक छोटे से केबिन में बैठी ग्लूकोज की चाय पी रही थीं।

जहाज की कंपनी का इहलोक तो स्पष्टतः बन ही रहा था, परलोक भी ठीक होगा––ऐसा निश्चित सा ही है।

तो एक दिन, एक रात और अगला आधा दिन लोक गीत, ग्राम्य गीत, भजन, दोहे, चौपाई, गायत्री मंत्र, 'अरे, अँखियाँ फूट गईन का ?' 'बाबा, हामको सीर में बोइठेगा न क्या ?' सुनते-सुनते गंगासागर पहुँच ही गए।

जहाज ने लंगर डाला। लकड़ी के दो तख्तों की सीढ़ी लगाई गई और सब अपना-अपना सामान लेकर उतरे। मैंने भी सामान उतारा और किनारे सूखी रेत पर रख दिया। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, नावें और उनके मस्तूल दिखाई पड़ते थे। मेरी आँखें उस चीज को खोज रही थीं, जो शहर में कुली के नाम से विख्यात है। मैंने एक नाववाले से पूछा––"क्यों भई, यहाँ कोई बोझा ले जानेवाला मिलेगा ?"

"बाबू, यह कलकत्ता थोड़े ही है," उस आदमी ने टका सा जवाब दिया।

मेले का स्थान जहाँ हमें पहुँचना था, उस स्थान से लगभग डेढ़ मील दूर था। एक गहरी साँस लेकर मैंने अपने फेफड़ों को फुलाया और लगभग डेढ़ मन वज़न का मिलाजुला बिस्तर अपने कंधे पर उठाया और ताऊजी तथा ताईजी डेढ़ दिन तथा एक रात के अनवरत कीर्तन के बाद भी हाथों में छोटी-छोटी पुटलियाँ लेकर साथ-साथ चल पड़े।

हमारा गंतव्य स्थान एक सरकारी दफ़्तर का तंबू था। बात यह थी कि मैंने अपने एक परिचित बंगाली सज्जन से, जो एक दूसरे सरकारी दफ़्तर में काम करते थे, जब अपनी गंगा-सागर संबंधी तीर्थ-यात्रा के बारे में बताया, तो उन्होंने कहा कि उनके दफ़्तर की एक शाखा मेले में प्रतिवर्ष जाती है; और उस वर्ष जो बाबू मुख्य प्रबंधक होकर जा रहे हैं वह उनके घनिष्ट मित्र हैं। उनको वह खबर कर देंगे, तो बस फिर मुझे किसी बात की चिंता नहीं करनी पड़ेगी। कम-से-कम चार-पाँच तंबू होंगे, कई चपरासी और बस ऐश-ही-ऐश रहेंगे। दो-चार दिन बाद उन्होंने बताया कि वह अपने परिचित बाबू को तार और टेलीफ़ोन दोनों कर चुके थे कि मैं आ रहा हूँ और साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि मेरे क्लास वन सेण्ट्रल गवर्नमेंट अफ़सर होने की बात बताना भी वह नहीं भूले थे।

तो मैं, एक क्लास वन गवर्नमेण्ट अफ़सर, पीठ पर डेढ़ मन का बिस्तर लादे डेढ़ मील के नारकीय मार्ग को यह सोच-सोचकर कुछ

कम दुख के साथ पूरा करने का प्रयत्न कर रहा था कि बस तंबू तक पहुँचने की देर है, फिर तो हम ही होंगे। कई जगह पूछताछ करके उन तंबुओं के समूह के पास पहुँचे। परंतु हमें देखकर किसी को प्रसन्नता नहीं हुई, कोई उत्सुकतापूर्वक आगे नहीं बढ़ा। मैंने अपने परिचित की उन सज्जन के नाम लिखी चिट्ठी दी, तो उन्होंने चिट्ठी पर एक सरसरी दृष्टि दौड़ाकर एक बार चश्मे के भीतर से मुझे घूरा, फिर बोले--"आप तो बोहूत देरी कार दिया। हाम सोचने था जे आप नहीं आएगा।"

मैं बैठ गया, यह सोचकर कि अब देर हो चाहे सवेर, यहाँ से तो अब लाश ही उठेगी--अगर आज उठने का सवाल हुआ। फिर मैंने डरते-डरते पूछा--"क्या बात है, जगह नहीं है?"

"जाएगा? जाएगा, आभी तो सोब भोरती हो गया। आप आगाड़ी नहीं आया, एही वास्ते हाम सोचा जे आप नहीं आएगा।" जो कुछ उन्होंने अपनी हिंदी में समझाया उसका सारांश यह था कि उस समय सब तंबू भरे थे। किसी में बड़े साहब का परिवार था, किसी में उनका अपना परिवार, किसी में उनके परिचित और किसी में चपरासी तथा उनके परिचित। "फीर भी" उन्होंने कहा--"सोचने का कोई बात नहीं हाय। हाम बंदोबस्त कर देगा। आपको चींता का कोई जरूरत नहीं हाय।

× × × ×

मैंने इस हाय हाय में सांत्वना पाने का प्रयत्न किया, परंतु सांत्वना तो भाग्य की बात है, अपने प्रयत्न की थोड़े ही। हुआ क्या कि जिस तंबू में हम बैठे थे, उसका बाहर का भाग तो दफ्तर था और अंदर का भाग बाबू तथा उनके परिवार के रहने का स्थान। अवसर की बात कि ताईजी दोनों के बीचवाले द्वार पर बैठी थीं। हम लोग बात कर ही रहे थे कि एक अधेड़ अवस्था की बंगालिन, मध्यम श्रेणी के बंगाली

परिवार की अधेड़ स्त्रियों की सच्ची पद्धति में शरीर पर केवल एक मैली सी धोती पहने, हाथ में जल का लोटा लिए आई और द्वार के पास ठिठक गई। हम लोगों को देखते ही उसके माथे पर सिलवटें पड़ गईं। वह बोली तो कुछ नहीं, परंतु उसने अपनी मुद्रा से यह स्पष्ट कर दिया कि उसे हमारा आना तनिक भी अच्छा नहीं लगा। कुछ क्षण खड़ी रहकर वह बुदबुदाई।

ताईजी इशारा समझकर थोड़ा सा खिसक गईं और जाने योग्य रास्ता छोड़ दिया, परंतु इतना नहीं कि जानेवाले के कपड़े न छुए जाएँ। बंगाली महिला खड़ी रही और अबकी बार कुछ असहिष्णुता से बड़बड़ाई। ताईजी का मुँह तमतमा गया, परंतु वह थोड़ा और खिसक गईं।

एक तंबू से चपरासियों को विस्थापित किया गया--यह कार्य सरल नहीं हुआ, क्योंकि पहले तो चपरासी अपने उस तंबू से ही नहीं, उस स्थानविशेष से टलने को राजी नहीं हुए और बाबू तथा चपरासियों में खूब गरमागरम बहस हो चली। जब मैंने एकाएक कहा कि मैं उन लोगों को कष्ट नहीं देना चाहता, मैं कहीं और स्थान ढूँढ़ लूँगा, और अपना बिस्तर सँभालना आरंभ किया, तो बाबू एकाएक कुछ गरम हो पड़े और चपरासी नरम। हमें जगह मिल गई। पूरे समय ताईजी गंभीर रहीं और उनके मुख पर कुछ कर मिटने का निश्चय था। कुछ देर बाद वह बोलीं--"एक बंगालिन की यह मजाल कि मेरा अपमान करे!"

"क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"हमसे ऐसी छूत जैसे हम...."

"अरे, अरे, भंगी मत कह देना, नहीं तो क़ानून के पंजे में आ जाओगी। अब भंगी को अछूत समझना अपराध है," मैंने झट से कहा।

"मुर्दे खानेवाले इतनी छुआछूत करें!"

"बंगाली तो मुर्दे नहीं खाते," मैंने प्रतिवाद किया।

"मछली तो खाते हैं ! और मछली मुर्दे खाती हैं," ताईजी ने तर्क किया जो मेरे लिए अकाट्य सिद्ध हुआ । परंतु ताईजी संतुष्ट नहीं हुईं, बड़बड़ाती रहीं, "मैंने भी दिखा नहीं दिया तो ब्राह्मणी नहीं ।"

और वास्तव में ताईजी सच्ची ब्राह्मणी सिद्ध हुईं । हुआ क्या कि और बातें तो ठीक रहीं, परंतु रसोई एक ही थी । बंगाली बाबू का कहना था कि सवेरे आठ से बारह तक और शाम को चार से रात के आठ नौ तक तो उन लोगों का भोजन बनेगा । उसके बाद जो समय बचे उसमें हम लोग बना सकते हैं । उन्होंने दबी आवाज में यह भी सूचना दी कि खाना बाजार में भी मिल जाता है । उनके प्रस्तावों में भीतर से महिला कंठ में प्रांपटिंग की स्पष्ट ध्वनि आ रही थी ।

मेरा प्रस्ताव यह था कि हम लोग दो दिन पेट पर ठंढे पानी की पट्टी बांधकर पड़े रहें, तो कोई हर्ज नहीं । तीर्थ-स्थान पर उपवास करने से स्वर्ग जाने के लिए अधिक दिन ठहरना नहीं पड़ेगा । परंतु इस प्रस्ताव से विरोधी कैंप में कुछ खलबली सी मच गई । मैंने अवसर से लाभ उठाया और अपनी कल्पनाशक्ति को पूरी छूट दे दी और उन लोगों को अपनी टूटीफूटी बंगला में समझाया कि मेरे ताऊजी बहुत ही धर्मात्मा हैं और किसी के हाथ का छुआ खाना तो क्या, किसी की परछाई पड़ा हुआ भी भोजन करने को तैयार नहीं ।

फिर तो उस बंगाली गृहिणी की इच्छा के बावजूद बाबू तीन ब्राह्मणों की हत्या का पाप अपने सिर लेने को तैयार नहीं हुए और अंत में समझौता यह हुआ कि रसोई में लकीरों द्वारा अपने अपने पाकिस्तान बना लिए जाएँ, रेत खोदकर दो चूल्हे बना लिए जाएँ, और दोनों अपनी-अपनी सीमा में रहें । हम, क्योंकि आश्रित थे इसलिए द्वार के पास, द्वार की तीन चौथाई चौड़ाई बंगालिन महिला के लिए राजमार्ग छोड़कर, शेष रसोई के एक बटा तीन भाग में हमारे लिए रसोई की लाइन खिंच गई । बाबू ने इतनी कृपा की कि चपरासी से

लकड़ी और पानी मँगवा दिया, और इस बीच हम लोग स्नान के लिए चले गए।

इसी स्थान पर क्या, बल्कि इससे बहुत पहले गंगा और सागर के जल मिल जाते हैं। पानी बिलकुल खारा और बहुत गंदला है। जहाँ तक देखो जल-ही-जल है। परंतु उन दिनों जिस स्थान पर हम खड़े थे उससे दो-दो मील ऊपर-नीचे तक जहाँ तक दृष्टि जाती थी जल के ऊपर एक और चीज थी। ताऊजी और ताईजी किनारे के पास ही उस घोल में स्नान करके पवित्र हुए और जोरशोर से रसोई-शुद्धि में जुट गए। पहले चूल्हे में खूब सारी लकड़ियाँ लगाकर आग जलाई गई। फिर लक्ष्मण रेखा के भीतर अंगारे तथा गरम-गरम राख छिड़की गई। तब गंगासागर के जल नामी उस घोल विशेष का छिड़काव करके स्थान की शुद्धि पूर्ण हुई। ताईजी ने दाल पका ली और भात चूल्हे पर चढ़ा दिया।

× × × ×

जब दाल पक चुकी थी परंतु भात चूल्हे पर नहीं चढ़ाया गया था, उसी समय बंगाली महिला ने अपने चूल्हे को सँभालना आरंभ कर दिया था। इस कार्य के लिए बहुधा बाहर-भीतर जाना-आना पड़ता था और रास्ता ताईजी की लक्ष्मण रेखा से छूता हुआ था। क्योंकि बंगाली महिला का पति वहाँ का मालिक था और हम लोग शरणार्थी, उसका अधिकार था कि वह सीमोल्लंघन करे। फलस्वरूप उसका पैर कभी रेखा के ऊपर, कभी थोड़ा सा उसके अंदर पड़ना स्वाभाविक था। ताईजी प्रत्येक बार बड़बड़ा उठतीं; परंतु बंगालिन के चेहरे का भाव देख तथा कंठ के भीतर, बाहर आने के लिए उतावली गुर्राहट, उत्पन्न होती सुनकर कुशल इसी में समझतीं कि अपना घेरा छोटा करती जातीं। इंच-इंच करके घेरा छोटा होने लगा; परंतु उसी परिमाण में बंगालिन का राजमार्ग प्रशस्त होता गया।

आखिर सहनशक्ति की भी सीमा होती है। ताईजी की सीमा पूरी हो चुकी थी। परंतु, उसका प्रदर्शन इस नाटकीय ढंग से होगा, यह तो मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। इस बार जैसे ही बंगालिन द्वार से

होकर गई, ताईजी ने एक हुंकार भरी और अपने नंगे हाथों से चावल की पतीली उठाकर कई गज दूर बाहर फेंक दी। और उसके बाद सरस्वती वीणा की जो लगातार लहरी ताईजी के मुख से मुखरित हुई उसका वर्णन करना संभव नहीं। यद्यपि सरस्वती इस समय हिंदी में, जिसका एक शब्द भी बंगाली महिला नहीं समझती थी, बोल रही थीं, लेकिन क्योंकि भारत की लगभग सभी भाषाओं का मूल संस्कृत है और 'धर्मभ्रष्ट' शुद्ध संस्कृत शब्द है, जो सबकी समझ में आ गया।

वह महिला आशा से अधिक प्रभावित हुई ; क्योंकि बंगालिन होने के नाते किसी भी प्रकार की फ़ज़ूलखर्ची और फिर चावलों की—जिनमें उनके प्राण बसते हैं—और वह भी इस रूप में, उसके प्रत्येक दिन

के व्यवहार की चीजें नहीं थीं। उसकी ओर से संधि का प्रस्ताव आया, "आपको तो धोर्मो बोहूत हाय न ?"

"हम ब्राह्मण हैं। धर्म तो होगा ही," ताईजी ने सूचित किया।

"ओ तो जरूर बात, हाम भी ब्राह्मोण हाय।"

"हम लोग किसी के हाथ का छुआ नहीं खाते, बल्कि यदि कोई हमारी रसोई में घुस भी जाय, तो हमारी रसोई भ्रष्ट हो जाती है—यहाँ तक कि अपने घर के बच्चे या कुँवारे लड़के-लड़कियाँ भी घुस जायँ, तो हम नहीं खाएँगे।"

"हाम को भी धोर्मो बोहूत हाय। हमारा इधर में जो कापोड़ में चान (स्नान) होता हाय ना, उसको बोदली नहीं करने होगा, ओ हो में रान्ना (पकाना करने) होगा।"

फिर दोनों महिलाएँ बड़े सद्भाव से धर्मांधता की तराजू पर अंधविश्वास के बट्टे रख-रखकर धर्म को तौलने लगीं। बंगाली महिला ने बहुत प्रयत्न किया कि अपने धर्म की कोई विशेष प्रभावशाली बात बताए, परंतु भात की फेंकी हुई पतोली उसके मस्तिष्क पर कुछ ऐसी छा गई कि उसका इनफ़ीरियोरिटी कमप्लेक्स (लघुता की भावना) गया नहीं।

यात्रा के संबंध में एक घटना और न बतलाने से यह धर्मयुद्ध-वार्त्ता पूरी नहीं होगी। लौटते समय मुख्य-मुख्य बातें तो पहले जैसी थीं, परंतु थोड़े-थोड़े अंतर से, जैसे अधिकांश व्यक्तियों की जेबें अपेक्षाकृत हलकी थीं और कुछ की तो जेबें साफ़ ही हो गई थीं। कुछ लोग लौटे तो थे परंतु दाढ़ी मूँछ तथा सिर के बाल मुंडाकर, अर्थात् धार्मिक भाषा में भद्दर होकर। परंतु कुछ ऐसे भी थे, जो लौटे ही नहीं थे—भीड़भाड़ और नावों का डूबना तथा बीमारी।

हाँ, तो वह घटना ताईजी की चाय से संबंधित है। ताईजी को चाय की आदत है और इसके बिना रहना कठिन है। जहाज पर एक

रात तो बिता ली किसी प्रकार, अगला सवेरा चाय बिना काटे न कटे। घर पहुँचने में तब भी कम-से-कम छः घंटे थे। जहाज पर चाय बनाने-वाले, ताईजी के शब्दों में 'पता नहीं कौन ज़ात' थे। चाय चीनी अपने पास थी। ताईजी ने तरकीब लगाई। उन्होंने एक लोटे में चायवाले से उबला हुआ पानी चार पैसे के बदले में लाने को कहा।

"लेकिन चायवाला पता नहीं कौन जात है?" मैंने याद दिलाया।

"पानी में कोई हर्ज नहीं। वह तो भगवान का बनाया हुआ है," ताईजी ने उत्तर दिया। मैं भगवान और आदमी की बनाई चीजों के बँटवारे पर विचार करने लगा।

जिस समय चायवाला पानी का लोटा ला रहा था, मैं और ताईजी देख रहे थे। हठात् दूसरी जगह से जहाज का जमादार झाड़ू लिए आ निकला। अब एक ओर से जमादार, दूसरी ओर से पानी का लोटा लिए चायवाला (जिसको इकन्नी दी जा चुकी थी) और रास्ते की चौड़ाई एक फुट। उन दोनों के बीच का फासला कम होता गया। पाँच फुट....चार फुट....दो फुट....सहसा ताईजी ने मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

चायवाला पानी दे गया। मैंने कहा--"ताईजी, यह पानी तो भंगी ने छू दिया।"

"कब? मैंने तो नहीं देखा," ताईजी ने कहा और पानी में चाय की पत्ती डाल दी।
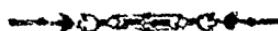
मैं बहुत व्यस्त हूँ

"नंबर प्लीज़ ?" एक्सचेंज से टेलीफ़ोन गर्ल की आवाज़ मुझे सुनाई पड़ती है और मैं उसे एक बैंक नंबर बतला देता हूँ और पब्लिक टेलीफ़ोन काल के लिए बने हुए उस छोटे से लकड़ी के कटघरे में खड़ा हुआ सामने लटके हुए 'कैसे टेलीफ़ोन करें' इश्तहार को पढ़ने लगता हूँ।

थोड़ी देर में मेरे कान में आवाज़ आती है—'टीं....ईं....ईं.... (चुप्पी) टीं....ईं....ईं....(चुप्पी) टीं....ईं....ईं....(चुप्पी) टीं....ईं....ईं....' —जिस आवाज़ को सामने के इश्तहार में लिखा गया है इंटरमिटेंट बज (अनियमित भनभनाहट)। मैं भी समझ जाता हूँ और टेलीफ़ोन गर्ल भी अपनी एकरस—बल्कि रसहीन—आवाज़ में मुझे सूचित करती है— "सौरी, नंबर खाली नहीं है।"

मैं चोंगा रखकर सामने लगे डिब्बे में बटन बी को दबाकर अपनी दुअन्नी बाहर निकालकर चल देता हूँ। मैं अपने एक मित्र को टेलीफ़ोन करना चाहता था। थोड़ी देर में फिर टेलीफ़ोन करने पर उस मित्र के दफ़्तर का एक क्लर्क मुझे सूचित करता है कि साहब इन्कम-टैक्स दफ़्तर गए हैं।

"कब तक लौटेंगे ?" मैंने पूछा।

"कुछ कहा नहीं जा सकता।"

"फिर भी—अंदाज़न ?"

"यही डेढ़ दो बजे तक।"

"तो दो बजे में फिर टेलीफ़ोन करूँगा—कह देना।" और मैंने अपना नाम तथा पता दे दिया।

मेरे मित्र एक व्यापारी हैं। कलकत्ते में तो उन्हें बड़ा व्यापारी नहीं कहा जा सकता—क्योंकि वह केवल एक कंपनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं, चार के डाइरेक्टर, एक फर्म के आठ आना पार्टनर और शायद पचीस कंपनियों के शेयर होल्डर। तीन गाड़ियाँ और चार टेलीफ़ोन हैं, एक घर पर—परंतु भारत के आधे दर्जन प्रमुख नगरों को छोड़कर शेष में उनकी गिनती रईसों में होती। वह हरदम व्यस्त रहते हैं। उनसे मिलना तो भगवान से मिलने से कम नहीं।

दो बजे मैंने टेलीफ़ोन किया—इस बार एक दुकान से, जहाँ पर टेलीफ़ोन करने की चवन्नी वसूल की गई। उसी क्लर्क ने बताया कि साहब डेढ़ बजे आए थे; लेकिन किसी पार्टी (ग्राहक) के साथ ग्रेट ईस्टर्न होटल में लंच के लिए गए हैं। अपनी-अपनी तक़दीर है। मेरा मित्र रोज़ ग्रेट ईस्टर्न होटल में लंच करता है और फिरपो या फ्लूरी में चाय पीता है—यदि कभी पीता हो और मैं जिस दिन उससे मिलने के सिलसिले में पाँच-सात बार टेलीफ़ोन करता हूँ उस दिन मेरी शाम की चाय उड़ जाती है।

लड़ाई से कुछ दिन पहले हमने साथ-साथ यूनिवर्सिटी छोड़ी थी। वह सन् '३९ में कलकत्ते आ गया था और मैं अपने ही छोटे से शहर में रह गया था। हज़ार पापड़ बेलकर मैं भी कलकत्ते ही आ गया हूँ। परंतु हम दोनों में कितना अंतर है कि उसे टेलीफ़ोन करने की फ़ुरसत नहीं मिलती और मुझे काम ही तब होता है जब उससे मिलने के

लिए टेलीफ़ोन करता हूँ। वास्तव में वह बहुत ही व्यस्त रहता है और कैसे न रहे ! अब उसका जो प्रोग्राम मैं आपको बतलाता हूँ, आप ही सोचकर देखिए कि उसमें अवकाश की गुंजाइश कहाँ है ?

× × × ×

वह सवेरे आठ बजे सोकर उठता है। इससे पहले उठ ही कैसे सकता है ? आखिर आदमी को जिंदा रखने के लिए आप कम-से-कम छः घंटे की नींद तो उसे देंगे ही—अव्वल तो आठ घंटे की नींद होनी चाहिए। मेरा मित्र कभी भी एक या दो बजे रात से पहले सो नहीं सकता। उसका कहना है कि उसे याद नहीं उसने सवेरे उगता हुआ सूर्य अंतिम बार कितने वर्ष पहले देखा था। सवेरे आठ बजे उसकी पत्नी उसे चाय पीने के लिए जगाती है। पहले यह सवेरे चाय देने का काम नौकरों का था, परंतु जिस नौकर ने भी साहब को जगाने का प्रयत्न किया, एकाएक उसके शरीर तथा मुख पर लाल नीले दाग़ पड़ गए और बदन में दर्द होने लगा, और उसने नौकरी छोड़ दी। इस प्रकार जब कई नौकर भाग गए तो भाभी ने यह काम अपने हाथ में लिया।

सतीश आँखें बंद किए-किए ही बिस्तर पर बैठ जायगा और बार-बार उबासियाँ लेता रहेगा, जब तक कि भाभी चाय की मेज और अख़बार उसके सामने नहीं कर देंगी। उसे कुल्ला करने या आँखों पर दो छींटे पानी के देने का भी समय नहीं। वैसे ही चाय पीनी पड़ती है और

यहीं नहीं, चाय पीते-पीते ही उस दिन का अख़बार समाप्त करना पड़ता है। यहाँ तक कि सामने बैठी पत्नी के प्रश्न भी उसके कानों तक नहीं पहुँचते। पत्नी कभी झल्लाकर कोई बात जोर से पूछती है तभी वह चार शब्द बोल देता है, नहीं तो हाँ, हूँ, ना से पूरी बातचीत का उत्तर दे देता है। इतने दिन से व्यापार सँभालते और हजार तरह के लोगों से मिलते-मिलते उसे इस बात का अभ्यास हो गया है कि घर पर बातचीत के दौरान में गागर में सागर किस प्रकार भरा जाय।

चाय के साथ-साथ कैप्सटन की एक सिगरेट जलती है। चाय और सिगरेट समाप्त करते ही वह पाख़ाने जाता है, जहाँ पानी वग़ैरह नौकर पहले से ही ठीक कर देता है। वहाँ से लौटकर वह रेडियो के पास बैठता है और साथ ही दाढ़ी भी बनाता जाता है, क्योंकि दाढ़ी का सामान पहले से ही सजा दिया जाता है। सतीश अधिकतर हलके-फुलके और फिल्मी गाने सुनता है, क्योंकि वे जल्दी समाप्त हो जाते हैं। पक्के राग में सात मिनट तो अलाप ही चलता रहता है। परन्तु, जब कभी कोई मिलनेवाला आ जाता है, उसे थोड़ा समय मिल जाता है और तब वह पक्के गाने—शास्त्रीय संगीत—सुनता है।

सतीश इतना व्यस्त रहता है कि क्या कहूँ ! कोई न कोई मिलने-वाला आता ही रहता है और वह सवेरे—चाहे नौ बजे हों या दस—लोगों से हमेशा ड्रेसिंग गाउन में मिलेगा और उसके मुँह पर दाढ़ी बनाने का साबुन लगा रहेगा—दाढ़ी बनाने से पहले वह किसी से मिलता नहीं और साबुन पोंछने या धोने की उसे फुरसत नहीं। बातचीत में दस बज जाते हैं। तब वह अपने मेहमान को फिर किसी समय आने के लिए कह कर सीधा ग़ुस्लख़ाने में घुसेगा और पहले मंजन करेगा, फिर ड्राई क्लीनिंग करेगा यानी मुँह और गरदन तथा हाथ धोकर क्रीम व पाउडर चेहरे पर और कोई हेयर क्रीम का वैक्स बालों पर लगाकर उन्हें सँवारेगा और बनियान के अंदर तथा गरदन पर एक चौथाई

पाउडर का डिब्बा छिड़केगा, और जब गुस्लखाने से निकलेगा तो महकता हुआ लिफ़ाफ़ा मालूम होगा।

जल्दी-जल्दी थोड़ा सा नाश्ता—दो आधे उबले अंडे, छः सैंडविच (चिकेन या मटन, कभी-कभी पनीर), थोड़े से फल और दो प्याले चाय। इसी समय कभी-कभी वह अपने तीन वर्ष के बच्चे से बात कर लेता है, क्योंकि रात को उसके आने से पहले बच्चा सो जाता है।

नाश्ता कर, धुले हुए कपड़े पहन, नौकर को पीछे की सीट पर बैठा—जिसके हाथ में ब्लैक एंड व्हाइट सिगरेट का सेल्स-टैक्स समेत चार रुपए बारह आने वाला डिब्बा होता है—वह अपने आप ही गाड़ी चलाकर दफ़्तर पहुँचता है।

दफ़्तर में तो काम का कहना ही क्या! सवेरे से जो मिलने के लिए आनेवालों का ताँता लगता है तो बस होश ही नहीं मिलता। आने-जानेवालों के अतिरिक्त इन्कम-टैक्स, सेलस-टैक्स, एक्सेस प्राफ़िट-टैक्स, कार्पोरेशन-टैक्स, मोटर-टैक्स के झगड़े, फिर इन्कम-टैक्स और सेल्स-टैक्स के लिए तथा अपने लिए अलग-अलग खाते तैयार कराना और कंपनी के मामले में एक तीसरा खाता—जो सिर्फ़ शेयर होल्डर्स के लिए होता है—तैयार कराना भी है।

फिर पुलिस में भी एक न एक झगड़ा चलता रहता है। बात यह है कि सतीश को धीरे-धीरे गाड़ी चलाने की फुरसत कहाँ! वह तो जब सड़कों पर से जाता है, तो धूल और पत्ते भी रास्ते से हट जाते हैं, फिर भी कभी-कभी कोई बदतमीज राहगीर या मोटर गाड़ी टकरा जाती है या रगड़ जाती है। बहुत बार ट्रैफ़िक पुलिसमैन के सिगनल की परवाह न करके जब वह बढ़ने लगा और पुलिसमैन ने रोककर उस का अमूल्य समय बरबाद करना चाहा, तो उसे ताव आ गया और पुलिसमैन की मरम्मत हो गई।

यद्यपि इसका फल कुछ विशेष बुरा नहीं हुआ, क्योंकि सतीश एक

लोकप्रिय व्यक्ति है—लगभग सभी प्रमुख क्लबों का सदस्य होने के नाते वह ऊँचे समाज में काफ़ी जानपहचान रखता है और पुलिस के कई बड़े अफ़सरों के साथ उसकी अच्छी दोस्ती है—फिर भी थोड़ी-बहुत परेशानी और किसी-किसी गंभीर मामले में कोर्ट में पेशी तो हो ही जाती है, और कोर्ट में भी जुरमाने की तो उसे चिंता नहीं, सिर्फ़ क़ैद से डरता है, क्योंकि उसमें समय नष्ट होता है।

इन सबके अलावा बहुत सी बाहर की पार्टियों को पत्र लिख-लिखकर बहुत से सरकारी विभागों के हमलों की नाकाबंदी करनी पड़ती है कि यदि अमुक विभाग से चिट्ठी आए तो लिखना कि कुल इतने रुपए का व्यापार हुआ है और अमुक विभाग से चिट्ठी आए तो लिखना उतने रुपए का व्यापार हुआ है। फिर भी यदि बात गंभीर हो जाए तो उसे सरकारी विभागों के क्लर्कों और चपरासियों की दीनहीन दशा का ध्यान आता है कि वे बेचारे इतना परिश्रम करते हैं और वेतन बहुत कम मिलता है। आजकल मँहगाई के समय में खर्च चलाना मुश्किल होता है। वह उनकी थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता कर देता है और कहावत प्रसिद्ध है कि जो ग़रीबों की सुनता है, भगवान उसकी सुनता है। मामले चलते-चलते एकदम बंद हो जाते हैं। फ़ाइलों से काग़ज़ात कहीं गड़बड़ हो जाते हैं और समय पर मिलते ही नहीं।

× × × ×

फिर बहुत से ग्राहकों को पटाने के लिए भी उनको समय देना पड़ता है। टी पार्टी, काकटेल पार्टी, लंच, डिनर, डिनर-डांस-कैब्रे पार्टी, स्टीमर पार्टी, यह पार्टी और वह पार्टी। इनमें उसे मजबूरन खाना-पीना पड़ता है। अब सोचिए कि जो आदमी सवेरे से शाम तक इतना व्यस्त हो उसे शाम को अपनी थकान उतारने के लिए कुछ तो चाहिए। नतीजा यह होता है कि उसे किसी-न-किसी शराबखाने की शरण लेनी

पड़ती है, और वह बस पीता रहता है रात के एक दो बजे तक। साथ
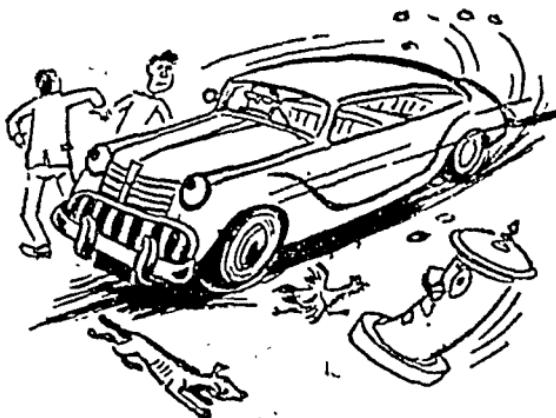
में कभी-कभी किसी कोमलांगी की कमर में हाथ डालकर वाल्ट्ज़ की ट्यून पर थिरक-थिरककर नाच भी लेता है।

सरदी के मौसम में प्रत्यक शनिवार को वह रायल टर्फ़ क्लब में जाता है। वास्तव में यही स्पोर्ट है जिससे उसे प्रेम है और वह बिना नाग़ा जाता है। घुड़दौड़ में जाकर फिर बाज़ी न लगाई जाए, ऐसा भी कहीं होता है—यह तो सिर्फ़ मज़े के लिए है। अरे भई, हज़ार पाँच सौ रुपए या दस-बीस हज़ार में भी तीन घंटे अच्छी तरह कट जाएँ तो क्या बुरा है? यह बात दूसरी है कि इस खेल-ही-खेल में सतीश अब तक साढ़े तीन लाख रुपए खो चुका है, और उसकी एक फ़र्म इसी सिलसिले में बिक गई थी।

जिन खेलों में अपना शरीर हिलाना-डुलाना पड़े उनसे सतीश को घृणा है। भला यह भी कोई बात हुई कि एक आदमी गेंद फेंक रहा है, दूसरा लकड़ी के तीन डंडों को गेंद से बचाने का प्रयत्न कर रहा है, बाकी बीस खेलनेवाले फालतू हैं—कम-से-कम दस तो हैं ही—और साथ में सारी पब्लिक भी जो मूँगफली चबाने और संतरे खाने के अलावा या इधर-उधर देखने-दिखाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करती? या फुटबाल ही लो—यह भी कोई काम का खेल है? हाथ-पैर टूट जाएँ सो अलग।

परंतु खेलों से घृणा होते हुए भी सतीश हज़ार रुपए देकर नेशनल स्पोर्ट्स का सदस्य बना——राजकुमारी अमृतकौर की अपील पर। देशभक्ति ! और एक बार मैंने उसे उसके एक मित्र को फ़ोन करते सुना——"क्या ! हाकी मैच देखने नहीं जाओगे ? अजीब जंगली हो ! अबे, पैसा ही दुनिया में सब कुछ नहीं, कुछ मनोरंजन भी तो हो और फिर वहाँ अमुक अमुक आ रहे हैं। पता चलेगा कि तू नहीं गया तो क्या समझेंगे ?"

इतनी परेशानी तथा व्यस्तता का जब उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने लगता है तो उसके डाक्टर उसे यूरोप भ्रमण की सलाह देते हैं। अभी पिछली बार वह छः मास तक इंगलैंड, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, स्पेन आदि का दौरा करता रहा। बीच-बीच में कभी-कभी बिजनेस की बातचीत भी चलती रहती। और यह विदेश-यात्रा का खर्च——लगभग चालीस हज़ार रुपए——सब-का-सब इन्कम-टैक्स रिटर्न में उचित रूप से 'केवल व्यापार के लिए खर्च' के ख़ाने में भारतीय इन्कम-टैक्स ऐक्ट की धारा दस उपधारा पंदरह के अंतर्गत इन्कम-टैक्स से बरी दिखाए गए थे। जब इन्कम-टैक्स अफ़सर ने स्वीकार नहीं किया तो उसने घर आकर उस अफ़सर के घर की महिलाओं के साथ अपना निकटतम संबंध स्थापित करने की इच्छा प्रकट की।

उस समय छः मास तक सतीश किसी से भी नहीं मिल सका था। हाँ, उसकी पत्नी के पास यूरोपीय नगरों से पत्र आते रहे। "मैं आजकल इस नगर में हूँ, इतने दिन रहूँगा, बहुत व्यस्त हूँ, मुन्ने को प्यार।"

सतीश कुछ भी करे उसकी शाम सदा व्यस्त रहती है। यदि घुड़दौड़ तथा विभिन्न मैचों से अवकाश मिला भी तो हर रोज़ के चैरिटी शो, वैरायटी शो, यह शो और वह शो लगे रहते हैं। यह तो कलकत्ता है न ! एक तो टिकट बेचनेवाली युवतियाँ भड़कीले वस्त्रों

में, शरीर दिखाएँ या छुपाएँ के बीच समझौता सा करती हुई, बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर उसके पास आती हैं, तो उन्हें निराश नहीं किया जा सकता। दूसरे, जब आपका व्यापारी प्रतिद्वंद्वी जा रहा है, तो आप कैसे पीछे रहेंगे? ऐसी ही जगहों पर तो समाज के प्रमुख नागरिकों से परिचय होता है, नए संबंध स्थापित होते हैं। तात्पर्य यह कि सतीश को ऊँची श्रेणी का टिकट लेना पड़ता और जाना पड़ता है और पता नहीं किस प्रकार रात के बारह एक बज जाते हैं और सोतेसुलाते वही दो। तब स्वाभाविक ही है कि वह सवेरे आठ बजे सोकर उठे।

अब यदि किसी के मिलने के अनुरोध अथवा न मिलने के उलाहने का उत्तर सतीश यह कहकर दे कि मैं बहुत व्यस्त हूँ, तो उसमें आश्चर्य की क्या बात है?

एक नेता की मृत्यु

नेता बालकरामजी की मृत्यु से उसके परिवारवालों तथा अन्यान्य संबंधियों पर जो कुछ बीती हो, उससे मुझे विशेष मतलब नहीं, क्योंकि बालकराम उन्हें इस योग्य छोड़ गया है कि वे अपने पैरों पर खड़े रह सकें--जो कुछ मुझ पर बीत रही है, मुझे तो उसकी चिंता है।

बालकराम की मृत्यु के पश्चात्, उसके साथ मेरे घनिष्ठ संबंध के कारण, लोगों ने उसके विषय में बातें जानने के लिए मेरे नाक में दम कर दिया है। कई प्रमुख पत्रों के संपादकों के पत्र मेरे पास आए पड़े हैं जिनमें मुझसे प्रार्थना की गई है कि मैं बालकराम का जीवनचरित्र लिखकर उसके सर्वाधिकार उन्हें बेच दूं।

नगरपालिका के सदस्य इस बात पर एकमत हैं कि दिवंगत आत्मा की शांति के लिए कोई स्मारक अवश्य बनवाया जाए। झगड़ा केवल इस बात का है कि स्मारक क्या रूप ले। सुना है उसे कई संस्थाओं द्वारा मरणोत्तर मानपद देने की चर्चा चल रही है। बालकराम के नाम से एक स्मारक-निधि खोलने की भी व्यवस्था की जा रही है और वह

निधि बच्चों तथा स्त्रियों के लाभार्थ व्यय की जाएगी, क्योंकि बच्चों तथा विशेषतः स्त्रियों पर बालकराम जान देता था और उन्हें सुखी करने के लिए बहुधा वह बड़े-बड़े साहसिक कार्य कर बैठता था।

जो हो, मैं यह जो कुछ लिख रहा हूँ वह मुख्यतः अपने लिए--यदि साथ-साथ जिज्ञासुओं की जिज्ञासा भी शांत हो जाए तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। यह लिखना कुछ हद तक मेरा कर्त्तव्य भी है, क्योंकि मैं और बालकराम एक ही मुहल्ले के रहनेवाले बल्कि एक-दूसरे से मिले हुए घरों के रहनेवाले थे, लगभग समवयस्क थे, घनिष्ठ भी थे--यह भी कुछ हद तक कहा जा सकता है। परंतु, सबसे बड़ा कारण तो यह है कि ऐसा करके मैं उसकी एक बहुत बड़ी इच्छा की पूर्ति कर रहा हूँ। बालकराम को मुझसे सदा यह शिकायत रही कि मैंने उसे कभी भी अपने उपन्यासों अथवा कहानियों का नायक नहीं बनाया। उसका विचार था कि उसका जीवनचरित्र लिखनेवाले को कम-से-कम मंगला-प्रसाद पारितोषिक अवश्य मिल जाएगा। तो उसके जीवन से संबंधित कुछ बातें लिखकर मैं उसकी वह इच्छा पूरी कर रहा हूँ, जो उसके जीतेजी नहीं कर सका।

हमारे पड़ोस में एक पंडित दयाराम रहते थे। वह किसी समय एक रियासत की सेना में सिपाही थे, परंतु दुर्भाग्य से उनकी वीरता केवल जिह्वा तक ही सीमित थी और उस वीरता का लोहा किसी भी सेना-नायक ने नहीं माना और उन्हें सेना से सम्मानपूर्वक विदा होना पड़ा। सिपाहीगिरी के बाद जो सरल पेशा पंडितजी को सूझा वह था–धर्म की ठेकेदारी। जबान के चलते तो थे ही, एक पत्रा, एक सत्यनारायण की कथा की पोथी और थोड़ी-सी विभिन्न मंत्रों की भाषाटीकावाली पोथियाँ तथा विवाहादि के मंत्रों की पुस्तकें कुछ माँगकर, कुछ मोल लेकर इकट्ठी कर लीं और लोगों को 'त्वदा रूपयामि नमः' के भाव पर स्वर्ग के टिकट बेचने लगे।

पंडितजी सुंदर व स्वस्थ थे और स्त्रियों के मन को लुभानेवाली कहानियों का अक्षय भंडार पास रखते थे। सेठानियों में उनकी प्रेक्टिस अच्छी चल पड़ी। पैसा तो विशेष नहीं जुड़ा, पर धर्म के बल पर पुत्रोत्पत्ति की कामना करनेवाली सेठानियों तथा सट्टे का नंबर ज्योतिष के बल पर जानने की मृगतृष्णा के पीछे भागनेवाले सेठों के सहारे और कुछ पंडितजी की निर्लज्ज-दान-याचना पर रोटी-कपड़े का काम चलने लगा। देश से पंडिताइनजी भी आ गईं।

× × × ×

ऋतु अनुसार पंडिताइन गर्भवती हुई और उचित समय पर उन्होंने एक पुत्ररत्न को जन्म दिया, जिसका नाम पंडितजी ने ज्योतिष के गहन अध्ययन के पश्चात् बालकराम रखा। यही बालकराम मेरा बचपन का साथी तथा पीछे कुछ दिन तक सहपाठी रहा। उसके पढ़ने-लिखने के विषय में इसके अतिरिक्त मैं कुछ विशेष नहीं कह सकता कि वह इस ओर ध्यान नहीं देता था। परंतु, गुणीजन इस लापरवाही में भी बालकराम की प्रतिभा को ढूँढ़ निकालते थे। अभी हाल ही में एक पत्र के संवाददाता मेरे पास इंटरव्यू के लिए आए।

"आप बालकरामजी को जानते थे?"

"हाँ।"

"कब से?"

"बचपन से।"

"बचपन में वह कैसे थे?"

"वह बहुधा चुप तथा और साथियों से बिलकुल अलग रहते थे।"

"आपका मतलब है कि हर समय किसी-न-किसी समस्या पर विचार करते रहते थे और उनकी एकाग्रता ऐसी थी कि चारों ओर के खेलकूद और शोरगुल से भी उनका ध्यान नहीं बँटता था ?"

"यह तो मैं नहीं जानता।"

अगले दिन समाचारपत्र में इस इंटरव्यू का हाल छपा और उसमें मेरे मुँह से वे बातें कहलवाई गई थीं जो आज के युग की हीरो वर्शिप से प्रभावित संवाददाता के मस्तिष्क में बालकराम के संबंध में बैठ गई थीं। मैंने प्रतिवाद नहीं किया, क्योंकि बालकराम की प्रशंसा ही उसमें थी।

बालकराम के बचपन तथा स्कूल के समय के क़िस्से पढ़ते-पढ़ते मैं भी यह समझने लगा हूँ कि उसे इन सांसारिक डिग्रियों आदि की इतनी परवा नहीं थी और वह अपनी मानसिक शक्तियों को बटोरने तथा बढ़ाने में लगा रहता था, इसीलिए स्कूल की कक्षाएँ पास करने में उसने कभी जल्दी नहीं की और एक-दो कक्षा को छोड़कर शेष सब दो-दो वर्ष में पास कीं। किसी समय वह मेरा सहपाठी था, परंतु जब मैं एम. ए. पास करके अपने नगर के ही कॉलिज में लेक्चरर नियुक्त हो गया, तो वह इंटरमीडिएट के प्रथम दर्जे में था। एक दिन मुझसे बोला—"अच्छा हुआ तुम आ गए, यहाँ तो मास्टर कुछ पढ़ाना ही नहीं जानते। मेरी समझ में तो उनका पढ़ाना आता नहीं।"

मेरा पढ़ाना भी बालकराम की समझ में नहीं आया, क्योंकि वार्षिक परीक्षा में मेरे परचे में भी वह पाँच नंबर से फ़ेल हो गया। इसी समय उसे स्कूल-कॉलिजों की पढ़ाई की निस्सारता का ज्ञान हुआ और कॉलिज को अपने अयोग्य समझ छोड़ दिया। पंडितजी की सीमित आय में ख़ाली बैठे जवान आदमी को खिलाना संभव नहीं था—जब पढ़ता था तब तो कुछ बहाना भी था। बालकराम अपनी स्वाभाविक परंपरा के अनुसार नौकरी-चाकरी, कामकाज के सर्वथा विरुद्ध था। उसका

कहना था कि नौकरी दूसरों की गुलामी है और व्यापार में बहुत बड़ा खतरा है, और फिर व्यापार आरंभ भी कैसे हो ?

भाग्य से नगर के सिटी बोर्ड के चेयरमैन सेठ दमड़ीराम पंडितजी के यजमान थे। सेठजी से कहसुनकर पंडितजी ने बालकराम को सिटी बोर्ड द्वारा संचालित कई अपर प्राइमरी पाठशालाओं में से एक में मास्टर रखवा दिया, क्योंकि अपने अँग्रेजी ज्ञान की अल्पता के कारण क्लर्की तथा दुबला-पतला शरीर होने और चुस्त-चालाक न दिखाई देने के कारण चपरासीगिरी के वह अयोग्य पाया गया। मास्टरजी तो बन गए, परंतु बालकराम की पाठशाला सेठजी के घर लगती थी, क्योंकि सेठजी का आदेश था—"मास्टर, सवेरे-शाम आकर बच्चियों को पढ़ा जाया करो, स्कूल महीने-महीने तनख़्वाह लेने चले जाना।"

सेठजी प्रसन्न थे, क्योंकि सेठानी की 'बच्चों के लिए मास्टर रख लो' की रट से उन्हें मुक्ति मिल गई थी ; सेठानी प्रसन्न थीं, क्योंकि बच्चों की मास्टर के बारे में रिपोर्ट अच्छी थी ; बच्चे प्रसन्न थे, क्योंकि उन्हें कुछ पढ़ना नहीं पड़ता था और बेचारा बालकराम—वह भी प्रसन्न था, क्योंकि उसे कुछ करना नहीं पड़ता था।

धीरे-धीरे बालकराम सेठजी के घर का आदमी बन गया अर्थात् अब वह सेठानीजी तथा उनकी सत्तरह वर्षीय पुत्री के लिए बाज़ार से तेल, पाउडर, स्नो, रूज़, लिपस्टिक, साबुन तथा अन्यान्य शृंगारप्रसाधन ख़रीदकर लानेवाला भी बन गया और कभी-कभी सिनेमा जाते समय मार्ग में उनकी चौकसी के लिए साथ जाने लगा—ड्राइवर के अतिरिक्त। इसके साथ-साथ उसमें व्यापारिक चतुराई भी आ गई यानी वह सीख गया कि किस प्रकार रुपए में बारह आने का सामान लाकर चवन्नी पान खाने के लिए बचाई जाए।

एक दिन बालकराम मेरे पास आकर बोला—"भई, एक ज़रूरी काम है।"

"कहो," मैंने कहा।

"एक स्पीच लिखनी है।"

"कैसी स्पीच ?"

"अरे, अपने सेठजी को सिटी बोर्ड के नए स्कूल का उद्घाटन करना है। उसी अवसर पर वह एक स्पीच देंगे।"

"तो सेठजी देते क्यों नहीं ?"

"उन्होंने मुझसे लिखने को कहा है।"

"अपनेआप क्यों नहीं लिखते ?"

बालकराम बग़लें झाँकने लगा। फिर बोला--"अरे भई, तुम जानो वह बड़े आदमी हैं--फ़ुरसत कहाँ मिलती है इतनी।"

"तो तुम्हीं लिख दो न।"

"तुम तो जानते ही हो कि मैं इन चीज़ों से कितनी दूर रहता हूँ," उसने कहा।

मतलब यह कि सेठजी ने बड़ी शान से स्पीच दी बल्कि पढ़ी। ख़ूब तालियाँ पिटीं और लोगों ने उनकी भूरिभूरि प्रशंसा की। स्पीच के दौरान में उन्होंने यह भी कहा था कि वह बड़े व्यस्त व्यक्ति हैं, इसलिए स्पीच ठीक-ठीक तैयार करने का समय उन्हें नहीं मिला, जो कुछ दो-चार मोटी-मोटी बातें जल्दी में नोट कर सके, उन्हीं पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

उस दिन से बालकराम के वेतन में पचीस रुपए मासिक की वृद्धि हो गई। इसके बाद बालकराम के वेतन में इस दिशा से वृद्धि के कई अवसर आए, परंतु मैं उनमें कुछ सहयोग न दे सका, क्योंकि एक बार बालकराम सेठजी के नवजात शिशु के संसार आगमन के उपलक्ष में एक स्वागत गान तैयार कराना चाहता था, परंतु मैं तो कविता से सदा ही दूर रहा हूँ। पता नहीं बच्चे का स्वागत किस प्रकार हुआ।

बालकराम सेठजी के ख़ूब काम का आदमी सिद्ध होता रहा और

वह भी उसे नेता बनाने में जुट गए। सेठजी स्थानीय महिला डिग्री कॉलिज की मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन थे। सेठजी स्वयं मुंडी अथवा महाजनी भाषा के पुश्तैनी विद्वान् थे, क्योंकि कई पुश्तों से इसी भाषा में उनके बहीखाते लिखे जाते थे और इसी भाषा के चमत्कार से उन्होंने अपने साझीदारों, व्यापारियों और पता नहीं किसे-किसे चकमे दिए थे।

मैनेजिंग कमेटी का साधारण सदस्य बनने के लिए प्रतिवर्ष छः रुपए चंदा देना पड़ता था और छः रुपए एक बार प्रवेश-शुल्क था। कोई एक सदस्य नाम प्रस्तावित कर सकता था और अन्य सदस्यों द्वारा आपत्ति न होने पर प्रस्तावित व्यक्ति सदस्य बना लिया जाता था। इस वर्ष सेठजी को अपने चेयरमैन रहने की आशा नहीं थी, तो उन्होंने लगभग अपने बीस व्यक्तियों को--मुनीमों, कारिंदों, ड्राइवर आदि जिनमें बालकराम भी था--अपने पैसे से मैनेजिंग कमेटी का साधारण सदस्य बनवा दिया। ये साधारण सदस्य मीटिंग में पीछे बेंचों पर बैठे रहते और आपस में बाजार-भाव अथवा सेठजी की सत्तरह वर्षीय कन्या के मास्टर बालकराम के साथ बढ़ते हुए मेलमिलाप पर टीकाटिप्पणी करते रहते।

एक दिन मैनेजिंग कमेटी की मीटिंग में बालकराम ने कहा कि वह कुछ प्रश्न पूछना चाहता है। पूरी कमेटी को ऐसा आश्चर्य हुआ जैसे बैल ब्याह गया हो। अनुमति मिलने पर बालकराम ने मैनेजिंग कमेटी के एक-एक कार्य की जो चिंदी उखाड़ी है, तो तालियों के दौंगड़े बरस पड़े और सदस्यों के मुख से वाह-वाह निकल पड़ी। मास्टरनियों के रिक्रूटमेंट, कक्षाओं का बढ़ाना-घटाना, छात्राओं का प्रवेश, अनुशासन, खेलकूद, होस्टल व चपरासियों की भरती के संबंध में सिफ़ारिश आदि कुछ नहीं छोड़ा। और इन सब बातों के बीच में चेयरमैन पर छींटे बराबर उड़ते रहे।

घर आकर सेठजी ने बालकराम की पीठ ठोंकी और कहा—"शाबाश, मास्टर! तुम्हारी स्मरण-शक्ति तेज है। मैनेजिंग कमेटी के अगले चेयरमैन तुम्हीं बनोगे। जैसे मैं कहता जाऊँ, चुपचाप करते चले जाओ।"

कुछ दिन पश्चात् अगस्त १९४२ आ गया। रोज सभाएँ होतीं। जलूस निकाले जाते और लोग गिरफ़्तार होकर जेल जाते। जलूसों पर प्रतिबंध लगे हुए थे। सेठजी नगर की एक प्रमुख राजनीतिक संस्था के प्रधान भी थे, परंतु जिस दिन से गिरफ़्तारियाँ आरंभ हुई थीं, उसी दिन से उनके पेट में बड़े जोर से दर्द हो रहा था और डाक्टर-पर-डाक्टर चले आ रहे थे। इसलिए उनके किसी जलूस में भाग लेने तथा गिरफ़्तार होने का प्रश्न ही नहीं था। इसके अतिरिक्त दर्द की वैसी अवस्था में तथा उनकी तिजोरी भरी होने के कारण पुलिस भी उन्हें गिरफ़्तार नहीं कर सकती थी। ख़ैर, उन्होंने दवा लाने के लिए बालकराम को एक ख़ास सड़क की एक ख़ास दुकान पर भेजा। सेठजी के पास उस दिन के जलूस का प्रोग्राम था। मतलब यह कि बालकराम बिना महात्मा गाँधीजी की जय बोले तथा इनक़लाब जिंदाबाद कहे, बड़े पीटने पर भी जबरदस्ती पुलिस की गाड़ी में लादकर जेल भेज दिया गया।

× × × ×

उसी दिन से बालकराम के नेता-जीवन का अध्याय आरंभ हुआ और उसके बाद जो उन्नति उसने की वह दैवी चमत्कार जैसी है। जेल में बालकराम पहले तो बड़ा रोया-पीटा, परंतु धीरे-धीरे वहाँ उसका मन

लग गया। बल्कि वहाँ उसे अच्छा भी लगने लगा, क्योंकि वहाँ कुछ काम नहीं करना पड़ता था। सेठजी की कृपा से उसे खाना अच्छा मिल जाता था। धीरे-धीरे उसने वहाँ नेतागिरी के योग्य बहुत सी बातें सीख लीं, जैसे मंचकला——एक क्षण दहाड़ना, दूसरे क्षण मिमियाना, हाथ फेंकना, मुँह बनाना, माथे में सलवटें डालना, मुट्ठियाँ बाँधना, मेज़ पर घूँसा मारना और बीच में हर तीसरे मिनट महात्मा गाँधी का नाम; हमारा गौरवपूर्ण भूत, ब्रिटिश सरकार द्वारा रक्तशोषण तथा सुनहरे भविष्य, डिसिप्लिन, कल्चर आदि नामों तथा शब्दों का प्रयोग करना; आवाज़ को क़ाबू में करके उसे परिस्थिति की माँग के अनुसार घर्राई हुई, भर्राई हुई, आदि बनाना।

जेल से छूटने पर नगर ने बालकराम का वह स्वागत किया जो बड़े-बड़े नेताओं को भी नसीब न होगा। कुली, कबाड़ी, इक्केवाले, टाँगेवाले, भिखमंगे तक जलूस में आ गए और सब सेठजी की मिठाई तथा चवन्नी की प्रशंसा कर रहे थे। बालकराम की तो जैसे काया ही पलट गई थी। बातचीत में वह अच्छे अच्छों के कान कतरने लगा था और सबसे

बड़ी बात यह हुई कि उसका बाज़ार-भाव बढ़ गया था। छुटभया नेता के भावी ससुरों के प्रस्ताव आने लगे। बातचीत में जब दहेज का प्रसंग आता, तो बालकराम कान पर हाथ रखकर कहता—

"महाराज, बस इसी चीज का नाम न लीजिए। मैं तो इसका नाम भी लेना पाप समझता हूँ। आजकल युवकों को पता नहीं क्या हो गया है——विवाह से पहले ही शर्त करने लगते हैं कि कार चाहिए, बंगला चाहिए, फ़रनीचर चाहिए, यह, वह और पता नहीं क्या-क्या चाहिए।

किंतु मैं तो इस सिद्धांत का माननेवाला हूँ कि भाग्य में होता है तो सब कुछ अपने आप मिल जाता है। मेरे पिताजी क्या थे---एक साधारण कथावाचक पंडित। मैं पढ़ा हुआ क्या हूँ--कुछ भी नहीं। और ये आजकल की डिग्रियाँ बेकार हैं। अनुभव चाहिए, अनुभव। मैं कुछ भी नहीं था और आज भगवान की दया से सब कुछ है। चार आदमियों में इज्जत है, कुछ पोजीशन है।"

बालकराम पर भगवान की दया एक बार फिर हुई। ससुर ने दहेज में कार, फ़रनीचर, गहने, नगदी, कपड़े आदि कुल मिलाकर लगभग पचास हजार रुपया दिया। फिर क्या था---बालकराम के पौ बारह हो गए। सेठ दमड़ीराम और अपने जोर के साथ ससुर का भी पैसा मिल गया। सेठ दमड़ीराम अब नगरपालिका के चेयरमैन नहीं रहे थे। उधर उन्होंने ब्लैक का लगभग पाँच लाख रुपया लगाकर दमड़ी मार्केट बनवा डाला था, जिसमें म्युनिसिपैलिटी के भवन निर्माण संबंधी किसी भी नियम की परवा नहीं की गई थी। फल यह हुआ कि उनके विरोधी ने, जो अब चेयरमैन था, मार्केट को एक निश्चित अवधि के अंदर तोड़ डालने की आज्ञा दे दी थी।

सेठजी ने अगले चुनाव में बालकराम का नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर करवा दिया। उसके बाद सदस्यों की जीभ पर लक्ष्मी सरस्वती बनकर बैठ गई और बालकराम नगरपालिका का नया चेयरमैन बन गया। सेठ दमड़ीराम ने मकान खाते में एक लाख रुपया और लिख दिया। हमारा लाभ यह हुआ कि दस वर्ष की लिखापढ़ी के पश्चात् मकान के सामने की सड़क और नाली पक्की बन गई।

× × × ×

प्रांतीय असेंबली का सदस्य बनने में बालकराम को विशेष कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि एक तो सेठ दमड़ीराम की कृपा से जेल की हवा खा चुका था, दूसरे वह पहले खादी भंडार का शुद्ध खद्दर पहनता था ;

क्योंकि कभी-कभी उसकी माँ फटी हुई पुरानी रजाइयों के रूग्रड़ को कात लिया करती थी, और नेता बन जाने के दो वर्ष बाद खादी भंडार द्वारा वितरित सिल्क पहनने लगा था, तीसरे दो अक्षरों के उस छोटे से नाम 'गांधी' में ऐसा जादू था कि वह नाम लेनेवालों के दोषों को बिलकुल ढक लेता था। बालकराम और उसके चुनाव में सहायता देने-वालों ने एक महीने तक महात्मा गांधी की जय छोड़कर कुछ नहीं बोला और जहाँ पर महात्मा गांधी की जय ने काम नहीं दिया वहाँ "सिंधी-हलवा-पान-बीड़ी-सिगरेट-साथ-में-दो-रुपए की जय" ने काम निकाला।

असेंबली के सदस्य बनने के पश्चात् मिनिस्टर बनना तो सहल था, क्योंकि उसके लिए यह प्रचार किया गया कि वह पिछड़ी हुई जातियों का प्रतिनिधि है। बात यह थी कि बालकराम के पूर्वज गढ़वाली थे और वह इस बात को कलंक की भाँति छिपाने का प्रयत्न किया करता था। परंतु अब उसने इसी बात को अपना सबसे मज़बूत साधन बनाया। उसका कहना था कि गढ़वाली बहुत पिछड़े हुए हैं। अधिकांश चौका-बरतन करनेवाले, रसोइए, दरबान या दफ़्तरों के चपरासी हैं। उनके हित की रक्षा करनेवाला भी कोई होना चाहिए। बात जंचनेवाली थी। बालकरामजी आबकारी महकमे के मिनिस्टर बन गए, जिसमें श्रम विभाग भी था। उसने जनता की ख़ूब सेवा करनी आरंभ की यानी जिस पहाड़ी गाँव में उसके पुरखों की जड़ें थीं और जहाँ हर तीसरे घरमें पहले ही शराब की एक भट्टी थी अब प्रत्येक घर में दो-दो हो गईं।

गढ़वाली मजदूर वर्ग ने इस आधार पर कि अब उनका एक प्रति-निधि इतने ऊँचे पर पर चला गया है जगहजगह छोटा काम करने से बिलकुल इनकार कर दिया। मिनिस्टर होने के नाते बालकराम को एक तो सरकारी कार मिलनी ही थी—सरकार द्वारा भाव तथा वितरण नियंत्रित शेवरलेट गाड़ियों के परमिटों की कमी भी उसे नहीं रही। फिर तो बालकराम हर तीसरे मास एक नई 'गाड़ी ख़रीदने तथा

बेचने लगा और इस प्रकार जनता की कुछ सेवा करने में समर्थ हुआ।

चुनाव के मामलों में बालकराम का भाग्य सदा उसके साथ रहा। वह पालियामेंट का सदस्य भी था। पालियामेंट की बैठकों में वह अपने कार्यकलापों तथा प्रश्नों द्वारा सदस्यों का खूब मनोरंजन करता और इस प्रकार खूब लोकप्रिय बनता जा रहा था। अंग्रेजी में एक कहावत है कि जहाँ देवता पग धरते हुए डरते हैं, मूर्ख वहीं दौड़ पड़ते हैं। यह तो मैं नहीं कह सकता कि बालकराम पर यह कहाँ तक लागू होती है, परंतु उसकी निर्भीकता की दाद दिए बिना नहीं रह सकता। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, स्पीकर--किसी की वह परवाह नहीं करता था। जो कुछ कहना हुआ फट से कह दिया--बाद में जो होता रहे। लोग परेशान हो गए। कुछ समझ में ही न आया कि उसका किया क्या जाय। संसार के सब विषयों पर वह अपनी राय प्रकट करता था और राय भी ऐसी कि न धरी जाय न उठाई जाय।

× × × ×

प्रधानमंत्री को बालकराम को चुप करने का एक अवसर मिला। मंत्रिमंडल में एक स्थान रिक्त हुआ, वहाँ बालकराम की नियुक्ति कर दी गई। परंपरा के अनुसार पहला काम बालकराम ने यह किया कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तथा गुजरात से लेकर आसाम तक के भारत-भ्रमण पर अपनी फ़ौजफल्ला समेत निकल पड़ा और लेक्चर दे-देकर लोगों की अन्न, वस्त्र तथा आश्रय की कमी दूर करने लगा तथा साधनवालों को महल, सिनेमा हाउस, रेस्टोरॉं, होटल आदि बनवाने के लिए सीमेंट, स्टील, लोहा, आदि के परमिट बनवाने में सहायता देने लगा। कई करोड़पति सेठों की इन्कम-टैक्स संबंधी जाँच सहसा बीच में ही रुकवा दी।

अपनी मिनिस्ट्री का काम उसने इतना सरल कर दिया कि गज़टेड पोस्ट से लेकर चपरासी तक की नियुक्ति स्वयं करने लगा और पब्लिक सर्विस कमीशन को अन्यान्य मिनिस्ट्रियों के अंतर्गत कार्य करनेवाले पदाधिकारियों का चुनाव करने का अवकाश दे दिया।

बालकराम की पत्नी देखने-सुनने में अच्छी थीं। पैसेवाले बाप की बेटी थीं और उन्होंने 'पति को वश में कैसे किया
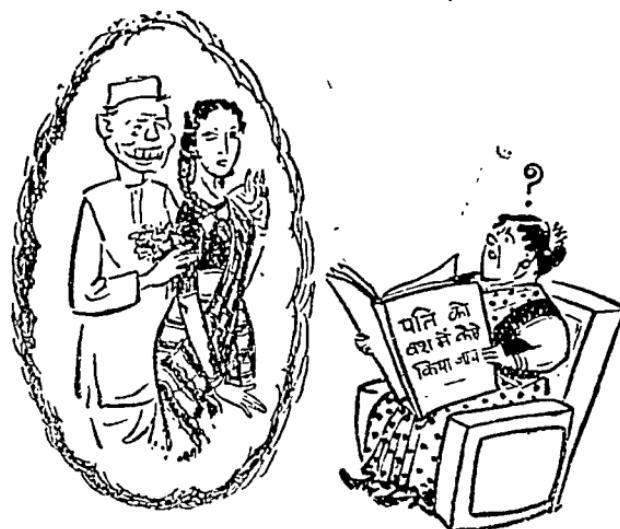
जाय ?' नामक पुस्तक भी पढ़ी थी। परंतु वह पुस्तक मेरे और आप जैसे पति को वश में करने का टिप थी, मिनिस्टर पति को नहीं और फिर पति भी ऐसा जोकि प्यादे से फ़र्जी हुआ था। इतनी क्रियाशील दिनचर्या के पश्चात् विशेष मनोरंजन आवश्यक था, जो बालकराम की पत्नी नहीं जुटा पाती थीं। उस मनोरंजन की खोज में ऐसे स्थानों पर भी जाना पड़ता था, जहाँ बालक-राम ड्राइवर को भी नहीं ले जाना चाहता था। गाड़ी चलाना

उसे आता नहीं था और पैदल जाना संभव नहीं था। सो बालकराम ने मोटर चलाना, सीखना आरंभ किया।

उन दिनों मैं दिल्ली में था और भाग्यवश एक दिन संध्या समय बालकराम के बंगले पर ही बैठा हुआ था। सहसा टेलीफ़ोन की घंटी टनटना उठी। बालकराम ने फ़ोन रिसीव किया और फ़ोन छोड़ते ही 'क्षमा करना' कहता हुआ बाहर भागा और स्वयं गाड़ी निकालकर ले गया। अभी गाड़ी उसे ठीक चलानी नहीं आती थी। मैं वहीं बैठा उसकी माता तथा पत्नी से बातें करता रहा।

शाम के छः बजे रेडियो पर समाचार ब्राडकास्ट हुआ— 'आज शाम को पाँच बजकर पैंतीस मिनट पर एक कार दुर्घटना में माननीय बालकराम की तत्काल मृत्यु हो गई। वह किसी आवश्यक कार्य से कहीं जा रहे थे; परंतु गंतव्य स्थान का अभी पता नहीं लगा है।'

और पता लगेगा भी नहीं—मैंने इसका प्रबन्ध कर दिया था।

ट्राम में चालीस मिनट

मैं ट्राम में बैठ गया हूँ, परन्तु सन्ध्या ५ बजे से ६ बजे के बीच ट्राम में बैठना इतना सरल नहीं जितनी सरलता से मैंने यह लिख दिया है। वास्तव में यहाँ पर ट्राम में जगह पाने की भी कुछ 'टेकनीक' है, कुछ तरकीबें हैं, जो आप कलकत्ते आने के तीन-चार दिन के अन्दर सीख जाते हैं। और यदि कुछ पैसा फ़ाल्तू हो तो कार्य-रूप में परिणत कर सकते हैं। ट्राम टर्मिनस के पास के हाल्ट से घर की ओर न आकर उल्टे टर्मिनस की ओर जानेवाली ट्राम में बैठ गये। जगह मिलने की सम्भावना तथा आशा है। यदि ट्राम टर्मिनस से घूमकर वापस घर की ओर चल देगी, तो सौ में निन्यानवे आपको खड़े होने का भी स्थान नहीं मिलेगा, बैठने का तो कौन कहे। बहुत बार लगातार कई ट्राम इसी प्रकार छोड़नी पड़ी हैं। तरकीब सीखने से पहले—क्योंकि जिस स्थान पर भी आदमी का लटकना सम्भव है, वहाँ पर आदमी पहले से घुँघरुओं की भाँति लटके हुए थे। तो नई रीति से उल्टी दिशा में जानेवाली ट्राम में बैठ गया हूँ। दो-तीन हाल्ट जाते-जाते ट्राम काफ़ी भर जाती है। लोग खड़े हुए हैं। ट्राम हाल्ट से चल दी, एक आदमी दौड़ता हुआ

आया, डंडा पकड़कर उछला और गाड़ी में चढ़ गया। धक्के से सँभलने में पास खड़े लोगों ने सहारा दिया; परन्तु जिस साहसिक तथा ख़तरे भरे रूप में वह कूदकर चढ़ा, जिसमें उसे गिरकर चोट खाने का पूरा अवसर था, उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया; यह तो यहाँ प्रति दूसरे मिनट

की बातें हैं। अगले हाल्ट पर कुछ महिलाएँ—आफ़िसों में टाइपिस्ट का काम करनेवाली गोरी, काली, एंग्लो-इंडियन तथा बंगाली लड़कियाँ चढ़ीं। जो लोग 'लेडीज़ ओन्ली'—महिलादिगेर जन्य-सीटों पर बैठ गये थे, खड़े हो गये। लड़कियाँ बैठ गईं।

सन्ध्या के समाचारपत्रवाले छोकरे चिल्ला रहे हैं—'ताज़ा ख़ोबोर, गोरोम ख़ोबोर, बोड़ा ख़ोबोर, टेलीग्राफ़ पढ़िये।' शाम को बहुत लोग ४ पृष्ठोंवाला इकन्नी दाम का अंग्रेज़ी अख़बार 'ऐडवांस' पढ़ते हैं। कुछ बाबू लोगों ने अख़बार ख़रीदा और भीड़, धक्का-मक्का, शोर के बावजूद पढ़ने में मग्न हो गये। अख़बार पढ़नेवाले के बराबर के सीट

पर बैठा आदमी गर्दन को जिराफ़ की भाँति लम्बी करके अखबार के मुख्य समाचारों पर एक दृष्टि डालने का प्रयत्न कर रहा है। मेरी सीट के बराबर में बैठा आदमी ऊँघ रहा है। उसका मुँह खुला है और होंठ लटके हुए हैं। सामने एक युवक क्लर्क अपने साथियों को जोर-जोर से सुनाकर बता रहा है कि आज किस प्रकार उसने अपने अफ़सर को फाँकी दी--किस प्रकार वह जल्दी ही दफ़्तर से उड़ आया।

× × × ×

ट्राम हाल्ट पर रुकी। अब तक भीड़ बहुत बढ़ चुकी है। शोर के मारे बुरी दशा है। लोग प्रत्येक सम्भव स्थान में फँसे हुए हैं; फिर भी और लोग बाहर लटकने का प्रयत्न कर रहे हैं। ट्राम कण्डक्टर ने रस्सी खींचकर दो बार टुन-टुन किया। ट्राम चल पड़ी। सहसा पिछले डिब्बे--द्वितीय श्रेणी में शोर मचा--'बाँध के, बाँध के।'

ट्राम रुक गई, कुछ लोग उतरे, कुछ चढ़े। फ़र्स्ट क्लासवाले कम्पार्टमेंट में भी एंग्लो-इण्डियन लड़की चढ़ गई। अब ज़रा दरवाज़े के पास खड़े लोगों की हरकतें देखने योग्य हैं। एक तो भीड़ है ही, परन्तु इस समय वे लोग इस प्रकार अपने हाथ-पैर हिला रहे हैं, जैसे वहाँ सुई के खड़ी होने की भी जगह न हो। एक पतला सा युवक विशेषतः उस लड़की के शरीर को किसी प्रकार छूने का प्रयत्न कर रहा है। वह

बड़ी परेशानी सी में पीछे हटकर उसे आगे बढ़ने देने के लिये जगह बनाने का बहाना कर रहा है। ज़रा सी जगह बनी, लड़की आगे बढ़ी, ट्राम

का झटका लगा, लड़के ने अपना शरीर उसके शरीर से सटा दिया, लड़की आगे बढ़ गई। ये बातें तो नित्य की हैं, उन पर कहाँ तक ध्यान दिया जाय। लेडीज़ सीट सब भरी हैं, लड़की खड़ी हो गई। ट्राम हाल्ट आया। कुछ लोग उतरे कुछ लोग चढ़े। दो-चार बूढ़ों और अधेड़ों को छोड़कर, सब बैठी लड़कियों के घुटने और खड़ी के शरीर छूते गये।

मेरा बाईं ओरवाला पड़ोसी सहसा चिल्लाया, 'ओरुन'।

'एईजे' एक नयी आई हुई सवारी ने उत्तर दिया।

'बोश' मेरे पड़ोसी ने कहा और अपनी अब तक चौड़ी करके फैलाई हुई टाँग सिकोड़ ली। 'ओरुन' आधा सीट पर, आधा हवा में बैठ गया और अपने शरीर को पेंच की तरह घुमाकर उस थोड़े से स्थान में फ़िट करने का प्रयत्न करने लगा। ट्राम चली, एक झटके से मेरा दाहिने ओर वाला पड़ोसी जाग गया। उसने ट्राम से बाहर देखा, फिर अन्दर एक बार, फिर उसकी आँखें मुँद रहीं और सिर, छाती ओर झुक रहा है।

लड़की के सामने बैठा हुआ युवक जो लड़की के मुख पर आँखें गड़ाए है, एकाएक हीरो बन जाता, 'आपनि एखाने बशुन' कहकर खड़ा हो जाता है। लड़की बिना धन्यवाद दिये बैठ जाती है और बाहर देखने लगती है। यह भी उसके लिये कोई नई चीज़ नहीं। लोग रोज़ ही तो सीट दे देते हैं; परन्तु युवक के लिये किसी को अपनी सीट देना रोज़ की बात नहीं है। उसका चेहरा और कान लाल हो रहे हैं। वह अनुभव कर रहा है कि लोगों की आँखें उस पर गड़ी हैं।

मेरे सामने खड़ा एक लड़का एक बंगाली लड़की के कान तक अपनी आवाज़ पहुँचाने के प्रयत्न में जोर-जोर से चिल्लाकर किचकिचा रहा है। उसके साथी पीछे नहीं रहना चाहते। उनमें से एक बीच-बीच में चिल्लाता है—'चोमोत्कार, चोमोत्कार.......ब्याटा तुई.......' इसके आगे के शब्द मैं सुन, समझ नहीं पाता।

× × × ×

ट्राम रुकती है। एक आदमी हाथ में थैला लिये चढ़ता है। बड़ी कठिनाई से वह सीटों के बीच की जगह में पहुँचा। उसका शरीर पसीने से तर है, पीठ पर सारा क़मीज़ गीला हो गया है। माथे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदें छलक आई हैं। गले पर पसीने की धार बनी हुई है। उसने एक बार बैठे हुए यात्रियों की ओर देखा, शायद कोई कहे बड़ी गर्मी है, या शायद सीट ही दे दे; पर ऐसा कोई नहीं। खड़े हुए आदमी ने अपनी धोती उठाई। एक कोने से चेहरे और गर्दन का पसीना पोंछा; फिर एक लम्बी सांस छोड़ दी। अपने थैले को उठाया, उसके अन्दर का सामान देखा, गिना। इतने में कण्डक्टर बोला—'आपनार टिकेट' या ऐसे कुछ शब्द क्योंकि कण्डक्टर की ख़ास आवाज़ में कुछ ख़ास शब्द कभी समझ में नहीं आते। यात्री ने दुअन्नी निकाली "गाड़ीहाट" कण्डक्टर ने एक हरा टिकट और दो पैसे दे दिये। फिर और यात्रियों से टिकट पूछने लगा। ट्राम रुकी। कुछ स्त्रियाँ कुछ पुरुष उतरे, कुछ चढ़े। एक लड़की फिर चढ़ी। वह सुन्दर है। उसके वस्त्र सुन्दर हैं और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसके शरीर में घुमाव और ऊँचाई-निचाई साधारण से अधिक है। हवा में उसका अंचल फहरा रहा है और लोगों की निगाहें वहीं मंडरा रही हैं। मुझसे पाँचवाँ आदमी तो ऐसा भूखा सा लगता है कि उसकी आँखें निश्चितरूप से अंचल और उसके नीचे कंचुकी को बेध चुकी होंगी। लड़की समझ रही है कि लोगों की निगाहें कहाँ हैं। वह आँचल ठीक करती है। फिर खिसक जाता है। उसका चेहरा और गर्दन लाल हो रहे हैं। एकाएक पिछले डिब्बे में झगड़ा मच जाता है। एक बिहारी और बंगाली लड़ रहे हैं। सबका ध्यान बटा, लड़की ने चैन की साँस ली। एक अधेड़ आदमी ने लड़की को अपनी सीट दे दी। ट्राम रुकी, अधेड़ आदमी उतर गया। पीछे भी झगड़ा शान्त हो गया। ट्राम चली। थोड़ी दूर जाकर धीमी हुई। ड्राइवर घंटा बजा रहा है। यह तो हाल्ट नहीं। लोगों ने

सामने देखने का प्रयत्न किया। एक टैक्सी लाइन पर खड़ी थी। ट्राम-ड्राइवर चिल्लाया। टैक्सी का सिक्ख ड्राइवर भी कुछ कमजोर फेफड़े नहीं रखता। ट्राम-ड्राइवर ने एक लेक्चर दिया विहारी में। टैक्सीवाले सिक्ख ने एक 'ए वन' गाली दी, जो लिखी नहीं जा सकती। दोनों अपने-अपने रास्ते चल दिए। एक आदमी अगले हाल्ट पर उतरने के लिए सीट से उठा। दो आदमी एक साथ खाली स्थान के लिए झपटे, एक बैठ जाता है।

× × × ×

एक छोटा बच्चा अपने बाप से प्रश्न-पर-प्रश्न कर रहा है—'बाबा, एइटा की ? एइटा की ?' बाबा को नींद आ रही है। वह कुछ गुनगुना देता है। बच्चा अगला प्रश्न करता है····ट्राम खाली होती जा रही है। खड़े हुए आदमी कम रह गये हैं। आराम से बैठी युवतियों और उनके साथ की बूढ़ियों की ओर क्रमशः प्यार, फटकार की दृष्टियाँ इतनी नहीं पड़ रही हैं। अखबार मुड़कर ट्राम से उतरते हैं और उनके साथ एक-एक आदमी भी। कण्डक्टर आराम से एक ओर खड़ा है। हाल्ट आता है। मैं भी अपने काग़ज-पत्र लिए उतर जाता हूँ। कण्डक्टर की दोहरी टुनटुन पर ट्राम आगे बढ़ जाती है और मैं जिस लड़की से अब तक नजरें मिलाने का प्रयत्न कर रहा था, अन्तिम बार नजर मिलाकर अपनी राह चल देता हूँ।

प्रतिमा

प्रतिमा मेरी पत्नी है और अत्यंत सुंदरी है। मैं यह बात मानने को तैयार नहीं हूँ कि इस संसार में कोई युवति उससे अधिक सुंदरी है या उससे पहले कभी हुई थी। प्रतिमा को जितना प्यार मैं करता हूँ उतना किसी पुरुष ने किसी स्त्री को कभी नहीं किया होगा, परंतु प्रतिमा को कभी-कभी इस विषय में संदेह हो जाता है और वह कहती है—"अब तुम मुझे प्यार नहीं करते।"

यह बात विशेषतः तब कही जाती है जब कभी मैं संयोगवश देर से घर लौटता हूँ और किसी मित्र की पत्नी अथवा किसी पड़ोसी या परिचित की युवति तथा कुमारी पुत्री के सौंदर्य की प्रशंसा कर बैठता हूँ। परंतु, उसके सारे संदेहों के लिए मेरे पास कुछ रामबाण नुस्खे हैं। वे मैं आपको नहीं बतला सकता, क्षमा कीजिए। कदाचित् आपकी पत्नी भी कभी-कभी आप पर ऐसा ही संदेह करती हो और आप उसकी कुछ माँगें, जैसे—बनारसी साड़ी, बढ़िया इयररिंग्स या निलोन का सूट, पूरी करके उसके संदेह को दूर करते होंगे। आप पूछेंगे कि मुझे यह सब

कैसे मालूम ? मैं उत्तर नहीं दूँगा, परंतु विश्वास रखिए, संदेह दूर करने के मेरे पास बिलकुल दूसरे ही नुस्खे हैं।

मेरी प्रतिमा तो इन चीज़ों की कभी माँग ही नहीं करती। हाँ, यह बात बिलकुल दूसरी है कि मेरी आय का आधे से अधिक भाग इन्हीं चीज़ों के बिल चुकाने में जाता है। बात यह है कि मैं उन दक़ियानूसी पतियों में से नहीं हूँ, जो अपनी पत्नियों को घर से बाहर नहीं निकलने देना चाहते। वर्त्तमान युग में स्त्रियों को अधिक-से-अधिक स्वतंत्रता और बराबरी का पद देने की माँग का विरोध करने की शक्ति मुझ में नहीं है। जब मैं प्रतिदिन घर से बाहर काम से और बेकाम जाता हूँ और प्रतिमा घर का कामकाज देखती, नौकरों से काम कराती, हिसाब आदि देखती है, तो सप्ताह में नहीं, तो कम-से-कम एक पखवारे में इस नियम को उलटने का अधिकार उसे है ही। मैं भी इन विशेष अवसरों पर आजकल के संभ्रांत पतियों की भाँति घर बैठा रहता हूँ और प्रतिमा ख़रीदारी करने बाज़ार जाती है। और आप जानिए तब भी पता नहीं किस प्रकार मेरी आय का आधे से अधिक भाग बिलों का भुगतान करने में चला जाता है। पर, साहब, कुछ भी हो, प्रतिमा मुझ से अनुचित माँग नहीं करती।

आज यह सब मैं इसलिए लिखने बैठा हूँ कि प्रतिमा बहुत बार कह चुकी है कि वह बहुत बुरी है और मेरे योग्य नहीं ; मैं उसके विषय में पता नहीं क्या सोचता होऊँगा, और ऐसी ही पता नहीं कितनी बातें। तो मैं इस समय अकेला बैठकर यह तो निश्चित कर लूँ कि मैं स्वयं प्रतिमा के विषय में उस समय क्या सोचता हूँ जब वह सामने नहीं होती।

हाँ, तो प्रतिमा न बहुत लंबी है, न छोटी—मध्यम श्रेणी की ऊँचाई है। यही होगी लगभग पाँच फ़ुट तीन इंच। वैसे ठीक ऊँचाई मैं कभी नहीं नाप सका। मेरी ऊँचाई ठीक पाँच फ़ुट आठ इंच है। मैं अपने आपसे उसकी ऊँचाई नापना चाहता हूँ, परंतु ज्योंही हम इतने पास-पास

खड़े होते हैं, कि ऊँचाई नापी जा सके, घटनाएँ कुछ ऐसी तेज़ी से घटने लगती हैं कि प्रतिमा कुछ विशेष प्रकार से मुझे घूरती भाग जाती है और ऊँचाई नापने का काम रह जाता है। खैर, संक्षेप में यह कहना चाहता हूँ कि रति अपने समय में प्रतिमा की भाँति सुंदरी रही होगी। शरीर की ऊँचाई, मोटाई, अंगों की काटछाँट, चाल, बोली, मुसकराहट, अंग संचालन---सब अपूर्व और अद्वितीय।

स्वभाव भी बहुत अच्छा और चरित्र ऊँचा। मुझ पर विश्वास करती है और अपनी कोई भी बात मुझसे नहीं छिपाती। परंतु कोई भी बात धीमे स्वर में मुझसे कहने के बाद यह कहना नहीं भूलती, "देखो, किसी से न कहना। होंठों निकली और कोठों चढ़ी।" पर मैं दुनिया की जासूसी से तंग हूँ। मैं किसी से नहीं कहता और प्रतिमा के तो कहने का प्रश्न ही नहीं उठता, फिर भी अगले ही दिन वह बात सारे पड़ोसियों को ज्ञात हो जाती है।

सीधी वह इतनी है कि अपनी रक्खी हुई चीज़ों का भी ध्यान नहीं रहता। वह झूठ बोलेगी---इस पर मुझे विश्वास नहीं। वह वास्तव में सीधी है। यही तो कारण है कि यद्यपि वह शपथें खाती है कि उसके पास न आने-जाने योग्य कोई कपड़ा है, और न घर में एक पैसा, फिर भी जब वास्तव में आवश्यकता पड़ती है और मैं कहता हूँ---'अरे भाई ढूँढ़ो, कुछ-न-कुछ तो निकल ही आएगा," तो ऐसी-ऐसी साड़ियाँ निकल पड़ती हैं कि मैं चकाचौंध रह जाता हूँ, और नोटों के बड़े बंडल नहीं तो छोटी-छोटी गड्डियाँ तो पता नहीं कहाँ से निकल ही पड़ती हैं। सीधी है न, अपनी रखी हुई चीज़ें भी भूल जाती है।

मेरा और घर का इतना ध्यान रखती है कि न पूछिए। मेरे और घर के लिए तो जो खर्च करा लो, परन्तु अपने लिए ? अजी, कुछ भी नहीं। देखिए न, मेरी पतलून यदि आध इंच भी ऊँची हो जाती है, तो दर्ज़ी का दुर्भाग्य ही समझिए। यदि कभी मैंने कहा भी---"अरे भई,

ठीक है। थोड़ा कपड़ा ही बचा।" तो एकदम उत्तर मिला—"जी नहीं, मुझे ऐसी बचत नहीं चाहिए। जब तुम्हीं ढंग से नहीं पहनोगे, तो बचत का क्या होगा ?"

और अपने लिए ? अब मैं क्या निवेदन करूँ। कमखर्ची की भी एक सीमा होती है, परन्तु अपने लिए उसने उस सीमा का भी ध्यान नहीं रखा। ब्लाऊज इतने छोटे बनाती है कि पेट और कमर दिखाई देते रहते हैं। आस्तीनें तो नहीं के बराबर होती हैं, और गला भी खूब नीचे तक खुला होता है। यह सब वह बेचारी घर की बचत के लिए ही तो करती है। गरमी हो या जाड़ा, वर्षा हो अथवा वसंत, उसे अपने छोटे ब्लाऊज, पेटीकोट और बारीक धोती के अतिरिक्त किसी चीज से मतलब नहीं। हाँ, सर्दी के दिनों में धूप निकलने पर बाजार-हाट जाते समय कंधों पर ओवरकोट अवश्य डाल लेती है। बेचारी सर्दी में दांत कटकटाती रहेगी, पर खर्च की बचत के मारे पूरी बाँह और बंद गले का ब्लाऊज और मोटी धोती नहीं पहनेगी।

युग की आदर्श पत्नी

प्रतिमा वास्तव में आज के युग की आदर्श पत्नी है। रहन-सहन इतना सादा और काम-काज इतना करती है कि मिनट भर का भी अवकाश नहीं मिलता। यहाँ तक कि जब कभी नौकर नहीं होता तो बारह बजे से पहले घर में बुहारी लगाने तक का समय नहीं मिल पाता। कार्यक्रम यह है—प्रातः सात या साढ़े सात बजे सोकर उठना। देखिए न, रात के ग्यारह बजे तक तो कमबख्त रेडियो में प्रोग्राम चलता रहता है—उससे पहले कैसे सोया जा सकता है ? फिर डाक्टरों के कथनानुसार जवान आदमी अथवा युवति को आठ घंटे की नींद लेना अत्यंत आवश्यक है। तो फिर सात-साढ़े-सात से पहले उठा भी कैसे जा सकता है ? नौकर प्रातःकाल की चाय देता है, तब पलंग से नीचे पैर पड़ते हैं, नौकर न हो तो यह चाय अपने आप बनानी पड़ती है।

नित्यकर्म से निवृत्त होते-होते आठ बजे। अब कुछ खबरें भी सुननी हैं। अंग्रेजी खबरों में जो बातें पूर्णतः स्पष्ट न हो सकीं, वे हिन्दुस्तानी में सुननी आवश्यक हो जाती हैं। साढ़े आठ बज गए। अब समाचारपत्र पढ़ना है। आख़िर पढ़ाई-लिखाई में इतना व्यय किया है, उसका भी तो कुछ लाभ उठाना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त रसोई में जलपान के लिए क्या बन रहा है, वह तो थोड़ी देर में पता चल ही जाएगा जब सामने आएगा, परन्तु यदि समाचारपत्र नहीं पढ़ा, तो संसार में क्या हो रहा है, यह बतलाने कोई नहीं आएगा। अख़बार पढ़ा, जलपान किया। इसके बाद में तो नहा-धोकर अपने दफ़्तर चला जाता हूँ और फिर बारह बजे भोजन करने और पाँच बजे छुट्टी होने पर आता हूँ।

कार्यक्रम

परन्तु छुट्टी के दिनों में प्रतिमा का कार्यक्रम पता चल जाता है। नहा-धो और कपड़े बदलकर प्रतिमा को कोई पत्रिका अथवा पुस्तक पढ़नी पड़ती है। बात यह है कि वर्त्तमान स्त्री-समाज बहुत उन्नति कर रहा है। चार आधुनिक युवतियों अथवा स्त्रियों के आपस में मिलकर बैठते ही स्त्री, स्वतंत्रता, समानाधिकार, स्त्रियों को पुरुषों के बराबर वेतन, परन्तु हल्का काम और चारगुनी छुट्टियाँ मिलनी चाहिएँ;

फ़ैशन के आधुनिकतम आदर्श, नया साहित्य—उपन्यास और कहानियाँ—सिनेमा—अभिनेता, अभिनेत्रियों की जीवनियाँ, वेतन, प्रेम-संबंध और बिछोह—आदि प्रचलित विषयों पर गरमागरम वादविवाद छिड़ जाता और प्रतिमा नहीं चाहती कि वह इन महत्त्वपूर्ण बातों से अनभिज्ञ

रहकर नक्कू बने और गँवार समझी जाए। घर की बातें और काम तो नौकर भी समझ और कर सकता है, परन्तु इस वादविवाद की तैयारी तो नौकर पर नहीं छोड़ी जा सकती।

दोपहर के भोजन के पश्चात् आराम के साथ-साथ रेडियो का साढ़े बारह से एक पचीस तक का प्रोग्राम—जिसमें लगभग सदा ही रेडियो नौकर को ही बंद करना पड़ता है, क्योंकि प्रतिमा बीच में ही सो जाती है; फिर उठने पर डाक सँभालनी, पत्रों के उत्तर देना, आदि। पाँच बजे हम दोनों चाय पीते हैं और उसके आध घंटे बाद तक इधर-उधर की कुछ आपबीती और कुछ जगबीती कहते हैं।

संध्या को मैं अपने क्लब अथवा मित्रों के पास जाता हूँ और वह अपनी स्त्रीसभा अथवा मित्रियों—मेरा मतलब है सहेलियों—के पास जाती है। कभी-कभी हम सिनेमा भी चले जाते हैं अथवा यों ही किसी सड़क पर घूमने निकल जाते हैं। लौटे, खाना खाया, रेडियो सुना और सो गए।

अब बतलाइए झाड़ूबुहारी जैसे कार्यों के लिए समय कहाँ से आए? झाड़ूबुहारी क्या, किसी भी कार्य के लिए इस कार्यक्रम में से समय नहीं निकल सकता।

अनोखा परिवर्तन

परन्तु इधर कुछ दिनों से प्रतिमा में अनोखा परिवर्तन देख रहा हूँ वह अपना खाना-पीना, पढ़ना, घूमना—सब छोड़ देगी, परन्तु एक काम के लिए समय अवश्य निकाल लेगी। आजकल उसने छोटे-छोटे कपड़े सीने की आदत डाल ली है। छोटे-छोटे कितने ही कपड़े सीकर बड़े यत्न से रख दिए हैं और अब स्वेटर और मोजों पर जुटी है। कितना कहता हूँ कि शहर के दर्जी जीवित हैं और होजरी के व्यापारियों की दुकानें भी नहीं जली हैं, पर प्रतिमा, मेरी किसी भी बात को न टालनेवाली प्रतिमा, इन बातों को टाल जाती है। कपड़ों को देखकर मुझे कभी हँसी

आती है, कभी झुँझलाहट होती है। भगवान जाने या प्रतिमा जाने कि क्या होगा इन बिल्ली के बच्चों के से कपड़ों का? मुझे प्रतिमा यह बात नहीं बतलाती। पहली बार मेरे प्रति उसने अविश्वास प्रकट करके कोई बात गुप्त रखी है।

यहाँ पर हमारी गृहस्थी की गाड़ी की सीधी चाल में थोड़ा टेढ़ापन आ गया है। वह मुझ पर एक बात में अविश्वास करती है, मैं दो बातों में उसका विश्वास नहीं करता। मैं उससे सच ही कहता हूँ—"प्रतिमा, तुम्हें यदि न देखता तो विश्वास नहीं करता कि कोई स्त्री भी इतनी सुंदरी हो सकती है।"

परंतु वह शांतिपूर्वक कह देती है—"अजी, रहने भी दो, झूठी प्रशंसा मत करो; इतनी तो खराब सूरत है। पता नहीं तुम्हें क्यों अच्छी लगती है? नहीं, जी, मैं सुंदरी नहीं।"

पर साहब, मैं नहीं मानता। यह तो सोलह आने झूठ और अविश्वसनीय है। दूसरी बात यह है कि कभी-कभी पता नहीं किस सनक में आकर मैं प्रतिमा से पूछ बैठता हूँ—"कहना, प्रतिमा, तुम मुझे प्यार भी करती हो?"

तब प्रतिमा मुझसे छूटने का प्रयत्न करती हुई उत्तर देती है—"अजी, छोड़ो भी, मैं तुम्हें प्यार-व्यार नहीं करती!"

पर आप जानिए, मैं प्रतिमा की इस बात का भी विश्वास नहीं करता।

बटेर का ब्याह

उस दिन बैठे-बिठाए नवाब काग़ज़अली और ठाकुर मुग्दरसिंह में चल गई—चल क्या गई, पाँच-पाँच हज़ार की शर्त भी लग गई। हुआ क्या कि दोनों एक दिन हज़रतगंज के कॉफ़ी हाउस में बैठे हुए थे, एक दूसरे के मुक़ाबले पर डटे हुए—नवाब साहब ने तले हुए काजू की एक प्लेट मँगाई, तो ठाकुर साहब ने तड़ से पकौड़े मँगा डाले। नवाब साहब की तरफ़ से पनीर पकौड़े का आर्डर हुआ, तो ठाकुर साहब ने पनीर सैंडविच मँगाई। नवाब साहब ने आग्नेय नेत्रों से अपने प्रति-द्वंद्वी को देखा और चिकेन सैंडविच की एक प्लेट उड़ा दी। ठाकुर साहब दो मिनट तक नवाब साहब को घृणा की दृष्टि से देखते रहे, उसके बाद एक प्लेट मटन पैटीज़ का आर्डर दिया। यानी बात बढ़ती गई और जब नवाब काग़ज़अली सिर्फ़ जवाबी आर्डर देने से संतुष्ट नहीं हुए और दुश्मन को पक्का पाया, तो खुल पड़े।

"ठाकुर, यह छिपी लड़ाई क्या, खुलकर मैदान में आओ।"

ठाकुर भी ताल ठोंककर आ गए। बोले—"नवाब, छिपकर लड़ने की हमें क्या पड़ी ! हो जाए आज खाने की शर्त।"

"शरीफ़ आदमी पेट से नहीं, दिमाग़ से लड़ते हैं, लेकिन अगर तुम्हें पेट से ही लड़ना है तो हो जाए अपने-अपने पट्ठों में।" नवाब काग़ज़-अली बोले। "और शर्त रही हज़ार-हज़ार की।"

"अजी, हज़ार क्या, पाँच हज़ार की लगाओ।" ठाकुर बोले। मतलब यह कि शर्त लग गई पाँच-पाँच हज़ार की और पूछो किस बात की—यही कि किसका पट्ठा ज्यादा खाता है !

नवाब साहब और ठाकुर साहब में पुश्तैनी दुश्मनी है, जिसे ये दोनों ही बड़े नियम-धर्म से निबाहते चले आ रहे हैं। नवाब साहब के घर पच्चीस आदमी ईद पर खाना खाएँगे, तो ठाकुर साहब दीवाली पर तीस आदमियों को जिमाएँगे। नवाब साहब मछली मारने जाएँगे, तो ठाकुर साहब खरगोश का शिकार खेलेंगे। ठाकुर साहब बग्घी ख़रीदेंगे, तो नवाब साहब कार।

इसी प्रतिद्वंद्विता के फलस्वरूप दोनों कॉफ़ी हाउस में भी डटे रहते थे, वरना ठाकुर साहब को कॉफ़ी बिलकुल पसंद नहीं थी ; बल्कि एक बार उन्होंने एक मित्र से कहा भी था—"अरे, यह कॉफ़ी भी कोई पीने की चीज है। वह तो कमबख़्त नवाब यहाँ आता है, इसलिए मुझे भी यहाँ आना पड़ता है। नहीं तो कॉफ़ी ऐसी लगती है, जैसे गरम पानी में जली हुई रोटी घोल दी हो।"

तो, साहब, क़िस्सा यह हुआ कि दंगल की तारीख़ निश्चित हो गई और जगह ठहरी चौकवाले हलवाई की दुकान, क्योंकि लखनऊ भर में उससे अधिक बढ़िया मिठाई कोई नहीं बनाता था। यह तय हुआ कि मैच से दो घंटा पहले नवाब साहब और ठाकुर साहब अपने-अपने पट्ठों को साथ लेकर चौकवाली दुकान पर पहुँच जाएँ, जहाँ पर चीजों का बनाव हो जाए। तीन दिन बाद खिलाड़ियों के नाम भेजे जाने थे।

तीन जज भी नियुक्त किए गए। एक मथुरा के वृन्दावन चौबे जिन्होंने मीठा खाने का अखिल भारतीय रेकार्ड पंदरह वर्ष तक किसी को नहीं जीतने दिया और जो मधुमेह के कारण अखाड़े से चैंपियन रिटायर हुए। दूसरे बनारस के विजयादास सुकुल जो भंग पीने के आल इंडिया रेकार्ड होल्डर थे और खाने की लाइन में भी जिन्हें पूरा-पूरा दखल था। बल्कि लोगों का विचार है कि यदि वह भंग की लाइन में विशेष योग्यता प्राप्त न करते तो वृन्दावन चौबे की पीठ पर धूल वह ही लगाते। तीसरे जज थे श्रीबद्रिकाश्रम के मटकानंद कुठारी, जिनका टीकड़ (मोटी रोटी) खाने का अखिल एशिया रेकार्ड था।

× × ×

खबर आग की तरह लखनऊ में फैली और दावानल की तरह हिंदुस्तान भर में। मथुरावालों को बुरा लगा क्योंकि अभी तक खाने की प्रतियोगिताएं वहीं हुआ करती थीं। परन्तु, क्योंकि यह ऑफ़िशल टैस्ट मैच नहीं था; इसलिए वे प्रतिवाद नहीं कर सके। फिर भी उन्होंने अपने प्रतिनिधि मैच के विषय में गुप्त तथा विश्वस्त समाचार लाने के लिए भेजे। लखनऊ में लोगों की भीड़ आने लगी। दाँव लगानेवालों को मौक़ा मिला। लोगों में अटकलें लगने लगीं कि देखें कौन-कौन से शेर सामने आते हैं।

नवाब साहब के पट्ठे के विषय में तो सब निश्चित से हो थे। वह था, मिश्रीचंद पांडे। यह मानी हुई बात थी कि लखनऊ में उसका मुक़ाबला

नहीं था और वह आगामी आल इंडिया खाद्‌ चैंपियनशिप में हिस्सा लेनेवाला भी था। पिछले साल वह केवल टेकनिकल पाइंट पर हार गया था।

ठाकुर साहब के आदमी का कुछ निश्चय नहीं था, यद्यपि लोगों को नब्बे प्रतिशत संदेह जमुना चौबे पर था, क्योंकि जमुना चौबे भी अपनी लाइन में गुरु था। वह मिले-जुले खाद्य यानी मीठा नमकीन बराबर मात्रा का चैंपियन था। लोग चौबे के पक्ष में अधिक थे, क्योंकि पांडे की विशेषता मिठाई में थी। नमकीन से वह घबराता था।

छाँट तो दोनों की बराबर-बराबर होनी थी। यह निश्चित था कि पांडे मीठा-ही-मीठा छाँटेगा और चौबे केवल नमकीन। दोनों चीज़ें आधी-आधी बँटनी थीं। इसमें जीत चौबे की ही होती थी, क्योंकि वह तो अपने ही फ़ील्ड में रहता और पांडे का क्षेत्र बिलकुल बदल जाता था।

परंतु लोगों को चौबे का निश्चय नहीं था कि ठाकुर का आदमी वही है। ठाकुर के पीछे दाँव लगानेवालों के जासूस लग गए कि देखें ठाकुर कहाँ जाते हैं। आखिर उनकी चिंता दूर हुई। ठाकुर नाम देने की तारीख़ से एक दिन पहले चौबे की तरफ़ चले।

चौबे के घर जाकर ठाकुर साहब ने आवाज़ लगाई—"अरे भई चतुर्वेदीजी, घर में हो क्या ?"

एक दुबला-पतला भूखा सा दिखनेवाला आदमी बाहर निकला और बोला—"कहिए ?"

"जमुना पंडित हैं ?" ठाकुर ने पूछा।

"अरे ठाकुर साहब, अब पहचानते भी नहीं ?" वह आदमी बोला।

ठाकुर बेहोश होते-होते बचे। उनकी आँखें फटी-फटी सी हो गईं, नीचे का जबड़ा लटककर काँपने लगा। उन्होंने दीवार का सहारा लेकर

अपनेआप को सँभाला। पाँच हज़ार रुपए जाने का इतना ग़म न था जितना दुश्मन के सामने अपनी हेठी होने का। नवाब की व्यंग्य बरसाती हुई आँख, पब्लिक में अपनी खिल्ली—सब ठाकुर की आँखों के सामने नाच उठा।

ठाकुर की दशा को देखकर जमुना चौबे भी घबरा गए। किसी तरह सँभालकर ठाकुर को अंदर ले गए और माजरा पूछा। ठाकुर ने अपने आने का कारण बताया और बोले—"दोस्त, तुमने तो मेरी जिंदगी बरबाद कर दी। तुम्हारे ऊपर तो मैं अपनी सारी आशाएँ लगाए हुए था; लेकिन तुम्हें हुआ क्या है? जब पिछली बार तुम्हें देखा था तो लखनऊ भर में कोई ऐसी मशीन नहीं थी, जो तुम्हारा वज़न तौलती, लेकिन आज तो तुम एक पंसारी की तराज़ू पर तुल जाओ। क्या बात हुई?"

"क्या बताऊँ, ठाकुर, मुझे तो बेटी के ब्याह की चिंता ने मार दिया है, लड़की ब्याह के लायक़ हुई, लेकिन लड़का ढूँढ़े से भी नहीं मिल रहा है। इसी सोच में मेरा तो खाना-पीना सब छूट गया है। अब तो एक छटाँक भी अन्न नहीं चलता। अब तो खाना-पीना तभी होगा जब इसके हाथ पीले कर दूँगा," चौबे ने कहा।

"लेकिन ब्याह लायक़ तुम्हारी है कौन सी लड़की?" ठाकुर ने पूछा।

"कौन सी को क्या कोई दस-बीस हैं—ले-देकर एक तो लड़की है बंटो।"

"बंटो?" ठाकुर ने आश्चर्य से कहा। "बंटो ब्याह लायक़ कब हो गई—कल तक तो फ़्रॉक पहने घूमती थी।"

"लड़कियों की माया तुम नहीं जानते, ठाकुर। आज फ़्रॉक पहने घूमती हैं कल को गोदी में बच्चा लिए हुए। ख़ैर, तो बताओ मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

"अब तुम क्या सहायता करोगे! मैं तो कल ही लखनऊ छोड़कर

भाग रहा हूं। अब मैं यह मुंह नवाब को नहीं दिखा सकूंगा।" ठाकुर रोआसा होकर बोले।

"नहीं, नहीं, इतना घबराने की क्या बात है। कुछ-न-कुछ तरकीब निकल आएगी।"

"तरकीब क्या खाक निकलेगी! कब निकलेगी? पांडे से टक्कर लेनेवाला क्या रात-ही-रात में पैदा हो जाएगा?" ठाकुर ने कड़वाई से कहा।

"मेरा ख्याल है मुझे अपनी बंटो को ही तुम्हारी सहायता के लिए भेजना पड़ेगा। वह...."

लेकिन उससे पहले कि चौबे वाक्य पूरा कर सके ठाकुर क्रोध से कांपते हुए उठ खड़े हुए और बोले—"चौबे, मेरे दोस्त होकर मेरी हँसी उड़ाओगे और ऐसे मामले में जिसमें मेरी जिंदगी-मौत का सवाल है?"

चौबे भी खड़ा हो गया और बोला—"तो हवन करते हाथ जलते हैं। मैं तो तुम्हारी सहायता कर रहा था...."

"जी, हाँ, बड़ी सहायता कर रहे थे!" ठाकुर ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा। "चैंपियन के सामने अपनी लड़की भेजकर?"

"ठाकुर!" चौबे चिल्लाया। "अगर मेरी लड़की की शान में कुछ कहा तो मैं दोस्ती की परवा नहीं करूंगा। इस लड़की को छोड़कर मेरा कोई नहीं है। उसके बारे में मैं एक भी शब्द नहीं सुन सकता। खाने के मामले में आज उसके सामने कोई नहीं ठहर सकता। मैंने अपने-आप उसे यह विद्या सिखाई है।"

मतलब यह कि ठाकुर ने स्वीकार किया कि परीक्षा के पश्चात् वह बंटो को अपनी बटेर बनाने को सहमत हो जाएँगे। उस गुप्त परीक्षा में बंटो बहुत सफल रही और ठाकुर को विश्वास हो गया कि बंटो यदि जीतेगी नहीं तो भी मुक़ाबला तो डटकर करेगी; और यदि नवाब का बटेर जीत भी गया तो एक लड़की से ही जीतेगा। इसलिए नवाब को उस जीत की इतनी प्रसन्नता नहीं होगी और इसीलिए ठाकुर साहब की अधिक हेठी नहीं होगी। ठाकुर साहब ने बंटो का नाम भेज दिया।

खादू क्षेत्रों में तहलका मच गया। पहला समय था जब कोई स्त्री इस प्रकार के मैच में उतर रही थी। और बंटो का तो कभी नाम भी नहीं सुना था। पांडे का पलड़ा भारी हो रहा था। वह 'हॉट फ़ेवरिट' था। दस-एक की शर्तें लग रही थीं। नवाब की छावनी में मज़े हो रहे थे।

यह तो निश्चित था कि पांडे जीतेगा, फिर भी इस मैच में इतने लोग रुचि ले रहे थे कि कलकत्ता, बंबई, मद्रास, दिल्ली, आगरा, लुधियाना, श्रीनगर, शिलांग और अंडमान तक से लोग चले आ रहे थे। लखनऊ के होटल, धर्मशाला, सराय, डाकबँगले, रेस्ट हाउस और इंस्पेक्शन हाउस तक खचाखच भरे पड़े थे। आल इंडिया रेडियो से मैच की रनिंग कमेंटरी प्रसारित की जानेवाली थी। मैच की प्रारंभिक शर्तें तय हो गई थीं। बड़ी उत्सुकता से मैच की प्रतीक्षा हो रही थी।

आखिर वह प्रतीक्षित दिन आ ही पहुँचा। मैच दिन में दो बजे आरंभ होनेवाला था। दस बजे से ही लोग चौक में जमा होने लगे। चौकवाले हलवाई की दुकान में जो बीचवाला बड़ा हाल था उसमें पचास से अधिक आदमी नहीं आ सकते थे। जो पचास आदमी अंदर जा सकते थे, उनमें ये लोग थे—दोनों खिलाड़ी, एक-एक आदमी खिलाड़ियों के साथ और नवाब साहब तथा ठाकुर साहब और उनके दो-दो जिगरी दोस्त, दस तो ये हुए। तीन जज, तेरह। दुकान का मालिक मोती

हलवाई, चौदह । एक टाइम कीपर, पंद्रह । दो आदमी आल इंडिया रेडियोवाले, सत्रह । दस प्रेस रिपोर्टर व फ़ोटोग्राफ़र, सत्ताइस । बारह विभिन्न प्रांतीय प्रतिनिधि, उनतालीस । एक डाक्टर, चालीस । और दस वे जिन्होंने सबसे अधिक रुपया दाँव पर लगाया था।

दुकान के बाहर भीड़ का सागर उमड़ रहा था। पुलिस का प्रबंध अच्छा था। स्थानीय बॉय स्काउट असोसियेशन, शिवाजी सेवा समिति तथा प्रांतीय रक्षा-दल की कुछ वरदियाँ भी दिखाई दे रही थीं। लाउड-स्पीकर जड़ित पुलिस वैन से ट्रैफ़िक कण्ट्रोल किया जा रहा था।

मोती हलवाई ने भी उस दिन अपनी दुकान दाएँ और बाएँ दो-दो ब्लाक और बढ़ा ली थी--सुना है उसने उन दुकानदारों को, जिनकी दुकान के आगे उसने अपनी दुकान बढ़ाई थी, एक-एक हज़ार रुपया दिया था। लेकिन उसके रुपए तो चुटकियों में वसूल हो रहे थे। उस दिन मिठाई तथा नमकीन तैयार करने के लिए उसने भारत के प्रसिद्ध कारीगर बुलाए थे और भारत की प्रायः सभी प्रचलित मिठाइयाँ वहाँ थीं। कितना आयोजन किया गया था, इसका अनुमान इसी बात से किया जा सकता था कि नमकीन बनानेवाले आगरा से, सोहनहलवा बनानेवाले दिल्ली के घंटेवाले की दुकान से, पेड़े बनानेवाले मथुरा से, बादाम की बरफ़ीवाले बनारस से, संदेश और रसगुल्लेवाले कलकत्ते से बुलाए गए थे।

× × × ×

शर्त के अनुसार खिलाड़ियों को बारह बजे पहुँच जाना चाहिए था। पांडे अपने असिस्टेंट समेत नवाब साहब की चार घोड़ोंवाली सजी हुई बग्घी में आ भी गया था। परंतु बारह बजने में पाँच मिनट तक भी बंटो का कोई पता नहीं था। ठाकुर बदहवास से अपनी कार लेकर चौबे के घर की ओर दौड़े और बिना आवाज़ दिए ही अंदर घुस गए। परंतु बेचारे ठीक से साँस भी न ले पाए थे कि उनकी दृष्टि

बंटो पर पड़ी और वह कटे हुए पेड़ की तरह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े।

चोबेजी और बंटो दोनों दौड़े। पानी के छींटे और मथुरावाले हाथ के दो-चार झापड़ खाकर ठाकुर साहब को होश आया, परंतु उनके मुंह से बोल ही नहीं निकला। बात यह हुई कि घर में घुसते ही ठाकुर ने देखा कि बंटो के सामने राशन का ढेर लगा है और बंटो उस पर जुटी हुई है।

बंटो ने ठाकुर साहब से बड़ी क्षमा मांगी और बताया कि मैच की बात तो वह बिलकुल ही भूल गई थी। ठाकुर साहब ने कहा कि वह तो भूल गई थी, लेकिन उनका अब क्या होगा? अगले दिन जब सारे हिंदुस्तान के अखबारों में उनके नाम की खिल्ली उड़ेगी तब वह कहां मुंह दिखाएंगे?

बंटो ने उन्हें आश्वासन दिलाया कि मैच में तब भी दो घंटे के लगभग थे और इतनी देर में वह फिर अपने नार्मल पर आ जाएगी। चोबेजी ने भी ठाकुर को समझाया कि उन्होंने अपने पूरे मनोयोग से बंटो को खादू विद्या की शिक्षा दी है और अब भी वह ऐसे लटके बता सकते हैं कि पांच-दस सेर खाना तो बात-की-बात में उड़ जाए।

खैर, साहब, ठाकुर बड़े मरे मन से उन दोनों को लेकर चौक में मोती हलवाई की दुकान पर पहुंचे, जहां बड़ी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा हो रही थी। बंटो के आते ही प्रारंभिक काररवाई आरंभ हो गई। पांडे और बंटो एक दूसरे से बारह फ़ुट की दूरी पर बैठाए गए और उन्हें बताया गया कि कुल बारह चीजें परोसी जाएंगी। उनमें से प्रत्येक को कोई सी छः चीजें छांटनी होंगी। हरएक को बारह चीजों में से ठीक आधा-आधा खाना पड़ेगा। खाने में केवल ठोस अथवा अर्द्धद्रव्य पदार्थ, जैसे रबड़ी, ही गिने जाएंगे। पीने की चीजों पर कोई नंबर नहीं दिए जाएंगे। वैसे उन्हें जो चाहें और जितना चाहें पीने की

हलवाई, चौदह। एक टाइम कीपर, पंद्रह। दो आदमी आल इंडिया रेडियोवाले, सत्रह। दस प्रेस रिपोर्टर व फ़ोटोग्राफ़र, सत्ताइस। बारह विभिन्न प्रांतीय प्रतिनिधि, उनतालीस। एक डाक्टर, चालीस। और दस वे जिन्होंने सबसे अधिक रुपया दाँव पर लगाया था।

दुकान के बाहर भीड़ का सागर उमड़ रहा था। पुलिस का प्रबंध अच्छा था। स्थानीय बॉय स्काउट असोसियेशन, शिवाजी सेवा समिति तथा प्रांतीय रक्षा-दल की कुछ वरदियाँ भी दिखाई दे रही थीं। लाउड-स्पीकर जड़ित पुलिस वैन से ट्रैफ़िक कण्ट्रोल किया जा रहा था।

मोती हलवाई ने भी उस दिन अपनी दुकान दाएँ और बाएँ दो-दो ब्लाक और बढ़ा ली थी—सुना है उसने उन दुकानदारों को, जिनकी दुकान के आगे उसने अपनी दुकान बढ़ाई थी, एक-एक हज़ार रुपया दिया था। लेकिन उसके रुपए तो चुटकियों में वसूल हो रहे थे। उस दिन मिठाई तथा नमकीन तैयार करने के लिए उसने भारत के प्रसिद्ध कारीगर बुलाए थे और भारत की प्रायः सभी प्रचलित मिठाइयाँ वहाँ थीं। कितना आयोजन किया गया था, इसका अनुमान इसी बात से किया जा सकता था कि नमकीन बनानेवाले आगरा से, सोहनहलवा बनानेवाले दिल्ली के घंटेवाले की दुकान से, पेड़े बनानेवाले मथुरा से, बादाम की बरफ़ीवाले बनारस से, संदेश और रसगुल्लेवाले कलकत्ते से बुलाए गए थे।

× × × ×

शर्त के अनुसार खिलाड़ियों को बारह बजे पहुँच जाना चाहिए था। पांडे अपने असिस्टेंट समेत नवाब साहब की चार घोड़ोंवाली सजी हुई बग्घी में आ भी गया था। परंतु बारह बजने में पाँच मिनट तक भी बंटो का कोई पता नहीं था। ठाकुर बदहवास से अपनी कार लेकर चौबे के घर की ओर दौड़े और बिना आवाज़ दिए ही अंदर घुस गए। परंतु बेचारे ठीक से साँस भी न ले पाए थे कि उनकी दृष्टि

बंटो पर पड़ी और वह कटे हुए पेड़ की तरह धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े।

चौबेजी और बंटो दोनों दौड़े। पानी के छींटे और मथुरावाले हाथ के दो-चार झापड़ खाकर ठाकुर साहब को होश आया, परंतु उनके मुँह से बोल ही नहीं निकला। बात यह हुई कि घर में घुसते ही ठाकुर ने देखा कि बंटो के सामने राशन का ढेर लगा है और बंटो उस पर जुटी हुई है।

बंटो ने ठाकुर साहब से बड़ी क्षमा माँगी और बताया कि मैच की बात तो वह बिलकुल ही भूल गई थी। ठाकुर साहब ने कहा कि वह तो भूल गई थी, लेकिन उनका अब क्या होगा? अगले दिन जब सारे हिंदुस्तान के अखबारों में उनके नाम की खिल्ली उड़ेगी तब वह कहाँ मुँह दिखाएँगे?

बंटो ने उन्हें आश्वासन दिलाया कि मैच में तब भी दो घंटे के लगभग थे और इतनी देर में वह फिर अपने नार्मल पर आ जाएगी। चौबेजी ने भी ठाकुर को समझाया कि उन्होंने अपने पूरे मनोयोग से बंटो को खादू विद्या की शिक्षा दी है और अब भी वह ऐसे लटके बता सकते हैं कि पाँच-दस सेर खाना तो बात-की-बात में उड़ जाए।

खैर, साहब, ठाकुर बड़े मरे मन से उन दोनों को लेकर चौक में मोती हलवाई की दुकान पर पहुँचे, जहाँ बड़ी उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा हो रही थी। बंटो के आते ही प्रारंभिक काररवाई आरंभ हो गई। पांडे और बंटो एक दूसरे से बारह फ़ुट की दूरी पर बैठाए गए और उन्हें बताया गया कि कुल बारह चीजें परोसी जाएँगी। उनमें से प्रत्येक को कोई सी छः चीजें छाँटनी होंगी। हरएक को बारह चीजों में से ठीक आधा-आधा खाना पड़ेगा। खाने में केवल ठोस अथवा अर्द्धद्रव्य पदार्थ, जैसे रबड़ी, ही गिने जाएँगे। पीने की चीजों पर कोई नंबर नहीं दिए जाएँगे। वैसे उन्हें जो चाहें और जितना चाहें पीने को

छूट है। वे लोग खाने की टेकनीक के संबंध में किसी से पूछ-ताछ नहीं कर सकते। पूछनेवाले को हारा हुआ घोषित किया जाएगा। यदि

दर्शकों में से भी कोई किसी खिलाड़ी को कुछ बताने का प्रयत्न करेगा, तब भी वह पार्टी हारी हुई मानी जाएगी। खाने में चाहे जितना समय ले सकते हैं; परंतु एक बार में तीन लगातार सेकिंड से अधिक नहीं रुक सकते। प्रत्येक को तीन-तीन थाली परोसने और उठानेवाले दिए गए। बंटो के पीछे छः फ़ुट की दूरी पर चौबे और ठाकुर साहब थे और पांडे के ठीक उतने ही पीछे पांडे का सहकारी और नवाब साहब।

पैसा उछालकर, शेर बकरी करके, पहली छाँट का चुनाव हुआ। पहली छाँट पांडे की थी। उसने सबसे पहले दस सेर मलाई के लड्डू छाँटे। बंटो ने दो सेर तले हुए नमकीन काजू मँगाए। जैसे ही पब्लिक ने यह सुना, वह हर्ष से उछल पड़ी। वास्तव में चौबे की बेटी है! चौबे मीठे नमकीन मिले-जुले का गुरु था। पांडे ने मुँह बनाया और अपनी दूसरी छाँट आठ सेर इमरती दी, तो बंटो ने दो सेर दालमोठ मँगाई। पांडे ने झुँझलाकर पाँच सेर पिस्ते की बरफ़ी मँगाई, तो बंटो ने दो सौ स्पंज रसगुल्ले छाँटे। इस चाल पर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि लगातार मीठा खाना चौबे की लाइन में नहीं था और इन सब प्रतियोगिताओं की शर्त यह होती थी कि चीज़ें एक बार में एक के

हिसाब परोसी जाएँगी और एक बार में ही साफ़ करनी पड़ेंगी। एक चीज़ समाप्त होने पर ही दूसरी चीज़ दी जाएगी।

मतलब यह कि पांडे ने निम्नलिखित चीज़ें छाँटीं—मलाई के लड्डू दस सेर, इमरती आठ सेर, पिस्ते की बरफ़ी पाँच सेर, पेड़ा बारह सेर, बादाम की बरफ़ी आठ सेर और हलुआ कराची दस सेर।

बंटो की छाँट थी—दो सेर तले हुए नमकीन काजू, दो सेर दालमोठ, दो सौ स्पंज रसगुल्ले, आठ सेर संदेश, दस सेर गोलगप्पे और दस सेर सोहन हलुआ।

दोनों के सामने पाँच-पाँच सेर मलाई लड्डू रख दिए गए। स्टार्टर घड़ी लेकर सेकिंड गिनने लगा। दर्शक पीछे हट गए। ठीक दो बजे स्टार्टर की आवाज़ आई—"गैट, सैट,—गो!" गो की आवाज़ पर पांडे और बंटो ने अपने-अपने कमाल दिखाने शुरु किए।

× × × ×

पांडे पहले ही क्षण से पुराने खिलाड़ी की सच्ची पद्धति से जम गया। उसने बड़ी तेज़ी से काम शुरू किया और बंटो को पीछे छोड़ दिया। नवाब साहब का चेहरा खिल रहा था और ठाकुर साहब मुरझा रहे थे। परंतु यदि पांडे में चाल थी तो बंटो में स्टाइल। क्या कमाल था उसके खाने में कि वाह, वाह! वाह, वाह! उसकी मोटी और छोटी-छोटी उँगलियों में एक क्षण लड्डू था और दूसरे क्षण लड्डू ग़ायब। मुंह भी पूरे बत्तीस बार चलता था।

धीरे-धीरे बंटो पीछे छूटने लगी, परंतु दूसरी परोस के अंत तक अंतर कम होने लगा, क्योंकि पांडे नमकीन खाने से घबराता था। तीसरी चाल में, यानी इमरती में, पांडे फिर आगे बढ़ा, परंतु फ़ासला उतना नहीं रहा। लेकिन चौथी चाल यानी दालमोठ में बंटो और पांडे में लगभग 'कैमरा फ़िनिश' रहा।

इस स्थान पर एक टैकनिकल पाइंट उठा। बंटो की ओर से चौबे ने प्रश्न किया कि थाली में जो चूरा बच जाता है या जो टुकड़े कपड़ों पर अथवा जमीन पर झड़कर गिर जाते हैं, उनका क्या होगा ? जजों ने सलाह करके फ़ैसला दिया कि पूरे बारह कोर्स में थाली में बचे, कपड़ों पर लगे, और ज़मीन पर गिरे चूरे की मात्रा तीन तोले से अधिक नहीं होनी चाहिए। अधिक होने पर प्रति तोला दो नंबर के हिसाब से नंबर कट जाएँगे।

इसके बाद पिस्ते की बरफ़ी आई। इसमें भी दोनों बराबर-बराबर छूटे। अब आए स्पंज रसगुल्ले। बंटो कुछ धीमी हो गई और अपने प्रतिद्वंद्वी की चालें नोट करने लगी। यहाँ पर पांडे ने थोड़ी ग़लती की। वह रसगुल्ले दनादन उतारने लगा, क्योंकि उसे अपनी तेज़ी पर भरोसा था कि कम-से-कम तेज़ी में कुछ नंबर अधिक मिल जाएँगे। इस तेज़ी में पांडे ने यह नोट नहीं किया कि बंटो रसगुल्ले निचोड़कर खा रही है और पांडे बिना निचोड़े रस समेत निगल रहा है। इससे यह हानि हुई कि पांडे के पेट में जगह अधिक घिरी, परंतु रस के लिए कोई नंबर नहीं मिले और रस छोड़ने के लिए बंटो के नंबर नहीं कटे। इस समय दोनों की चाल कम होने लगी थी।

गोलगप्पों में बंटो पांडे से आगे रही, जैसाकि स्वाभाविक था। परंतु उसकी चाल में वह बात नहीं रही थी। अब वे दोनों खाने के बीच-बीच में इधर-उधर भी देखने लगे थे। बाहर भीड़ में रेडियो पर कमेंटरी सुन-सुनकर हज़ारों के वारे-न्यारे हो रहे थे। पूरे मैच के फल पर तो दाँव लगे ही थे, प्रत्येक इनिंग या परोस (कोर्स) के फल पर दाँव लग रहे थे।

किसी तरह गोलगप्पे समाप्त हुए और कराची हलुआ आया। पाँच-पाँच सेर कराची हलुआ समाप्त होने में पूरे सैंतालीस मिनट लगे ; जबकि साधारणतः उसमें बीस मिनट लगने चाहिए थे। पांडे की अवस्था ख़राब हो चली थी, परंतु बंटो की भी कुछ विशेष अच्छी नहीं थी।

अब आई आख़िरी इनिंग--सोहन हलुआ, दस सेर। ठीक पाँच-पाँच सेर की दो पटरियाँ आईं, जिनके ऊपर बादाम, पिस्ते और काजू का बिछौना सा बिछा हुआ था और घी तो बस टपका पड़ता था। सामने थालों में रखी हुई जेल में क़ैदियों को मिलनेवाली चक्की के पाट जैसी लगती थीं।

पांडे ने बंटो की ओर एक बार देखकर एक टुकड़ा तोड़कर मुँह में रखा, दूसरा टुकड़ा रखा। एक सेकिंड बीता। बंटो ने सोहन हलुए की ओर हाथ नहीं बढ़ाया। दो सेकिंड। पांडे ने तीसरा टुकड़ा मुँह में रखा, परंतु बंटो अब भी चुप। सहसा बंटो ने मुड़कर अपने पिता चौबे को संकेत किया। चौबे पलक झपकते बंटो के पास पहुँच गया। बंटो ने चौबे के कान में कुछ कहा।

× × × ×

एकदम नवाब पार्टी ने चिल्लाकर प्रतिवाद किया। पांडे भी उठ गया और पुकार लगाई—"डिसक्वालीफ़ाइड !" रेडियो ने समाचार प्रसारित किया, बाहर भीड़ में शोर मचा। परंतु जजों ने कहा कि यह एक टेकनिकल पाइंट है और बंटो को डिसक्वालीफ़ाई किया जाए या नहीं--यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसने चौबे से क्या बात कही।

चौबे ने खड़े होकर गंभीर स्वर में कहा--"सज्जनो, मेरी बेटी ने मुझसे केवल ये शब्द कहे हैं—बाबा, हलुआ बहुत सुन्दर दिखाई देता है। इसे खतम करने के बाद मुझे एक चक्की और मिल सकती है ?"

नवाब साहब सिर पकड़कर बैठ गए। पांडे ने किसी प्रकार कहा—"महाशयो, मैं हार गया। चाहे मेरी जान निकल जाए, मैं अब एक टुकड़ा भी नहीं खा सकता।" यह कहकर वह बेहोश होकर गिर पड़ा और डाक्टर उसकी उपचर्या में लगा।

जजों ने एक स्वर से बंटो को विजयी घोषित किया । नवाब साहब पाँच हज़ार रुपए की थैली ठाकुर के हवाले करके चल दिए । उस शोर-ग़ुल में चौबे ने ठाकुर से क्या कहा यह किसी ने भी नहीं सुना । चौबे ने ठाकुर से कहा—"ठाकुर साहब, इस लड़की ने तो मुझे मुश्किल में डाल दिया था । इसने मुझसे कहा था कि बाबा, जान रहे या जाए, अब तो एक भी टुकड़ा नहीं खाया जाएगा ।"

ठाकुर बेहोश होकर गिर पड़े और उन्हें एंबूलेंस में किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलिज हास्पिटल ले जाया गया ।

कुछ दिन बाद ठाकुर साहब को एक निमंत्रणपत्र मिला—

"ईश्वर की असीम कृपा से मेरी एकमात्र पुत्री कुमारी बंटोरानी का शुभ विवाह पंडित मिश्रीचंद पांडे....दर्शनाभिलाषी—जमुनादास चौबे ।"

बात थी कुल सवा रुपए की

जी हाँ, कुल सवा रुपए की ही तो बात थी, लेकिन····लीजिए तो अब आपको पूरी कहानी ही सुना दूँ। हुआ यह कि उस दिन भी और दिनों की भाँति जी. एम. डिग्री कॉलिज की रसायन-शास्त्र प्रयोगशाला में कार्य हो रहा था। बी. एस-सी. के छात्र प्रयोग कर रहे थे और उनके शिक्षक मिस्टर डुग्गल कुरसी पर बैठे, मेज पर रखी हुई वर्ग पहेली भर रहे थे। सहसा प्रयोगशाला के एक कोने में उन्हें कुछ शोर सुनाई दिया। उस समय मिस्टर डुग्गल एक इंटरलाकर (ऐसा अक्षर जिसके सही या ग़लत होने पर दो शब्द ठीक या ग़लत होते हैं) भर रहे थे। अस्सी हज़ार का मामला अटका हुआ था, इसलिए उन्होंने शोर की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। परंतु जब शोर के साथ एक झन्नाहट के साथ काँच टूटने की आवाज़ आई तो उन्होंने वर्ग पहेली को छोड़ा और घटनास्थल की ओर चले।

घटनास्थल की ओर जाते-जाते उन्होंने एक छात्र, प्रकाश, को खिड़की के पास से भागकर उसके स्थान की ओर जाते देख लिया।

वह सीधे प्रकाश के पास पहुँचे। देखा कि उसके हाथ से रक्त वह रहा है और वह हाथ पर अमोनिया की पूरी शीशी उँडेल रहा है, यद्यपि इस कार्य के लिए थोड़ी सी बूँदें यथेष्ट होतीं।

क्योंकि मिस्टर डुग्गल ने प्रकाश को खिड़की से भागकर उसके स्थान की ओर जाते देख लिया था और उसके हाथ से रक्त भी वह रहा था, इसलिए प्रकाश यह नहीं कह सका कि खिड़की का शीशा उसने नहीं तोड़ा है। परंतु इससे अधिक डुग्गल साहब को कुछ पता नहीं चला। वह यह नहीं जान पाए कि प्रकाश अपना स्थान छोड़कर खिड़की के पास क्यों गया, और यदि गया ही था तो बेचारी खिड़की के क्यों मुक्का मार दिया, और यदि खिड़की पर प्रहार अनैच्छिक था और किसी बड़े मल्लयुद्ध का शौक था, तो उस मल्लयुद्ध में प्रकाश का प्रति-द्वंद्वी कौन था आदि, आदि।

प्रकाश यही कहता रहा कि उसे बड़ा खेद है और वह क्षमा चाहता है, परंतु इससे अधिक उसने कुछ नहीं बताया। डुग्गल साहब ने आहत खिड़की के पासवाले छात्रों से जानना चाहा, परंतु ठीक बात का पता नहीं चला। पता चलता भी कैसे--छात्र एक दूसरे के प्रति ग़द्दारी कैसे कर सकते थे! कॉलिज और अनुशासन जाए भाड़ में, अपने एक साथी का गला कैसे कटा दें! कॉलिज में अपने मित्रों के प्रति वफादारी सीखने आते हैं या गद्दारी? यदि अभी से यह सब नहीं सीखेंगे तो फिर जब कॉलिज छोड़ देंगे तो यह गुण कहाँ से आएगा?

डुग्गल साहब के क्रोध की सीमा नहीं थी और उनका क्रुद्ध होना भी ठीक था। छात्र यदि अनुशासन का पालन नहीं करेंगे, तो क्या शिक्षक करेंगे? एक तो यह कि एक छात्र ने अनुशासन भंग किया और कॉलिज की संपत्ति को हानि पहुँचाई, ऊपर से यह और अपराध कि बता कर न दें कि आखिर यह सब क्यों हुआ। कॉलिज के प्रति अपराध की सज़ा हुई--प्रकाश पर दस रुपए जुरमाना, और शिक्षक के प्रति

अपराध के—उनके कक्षा में बैठे रहने मात्र को उसने यथेष्ट नहीं समझा—उपलक्ष्य में प्रकाश को लिखित क्षमा माँगने की आज्ञा हुई।

जुरमाना देने में तो प्रकाश को कोई आपत्ति नहीं थी क्योंकि उसके पिता ने व्यापार में काफ़ी रुपया कमा लिया था, परंतु क्षमा माँगना, वह भी लिखित, असंभव था। आखिर उसकी भी कोई इज्जत है। पहले तो वह एक बड़े बाप का बेटा था, दूसरे बी. एस-सी. का छात्र था, तीसरे उसे अपने साथियों में भी तो मुँह दिखाना था। जबानी क्षमा माँगना तो और बात है—उसका किसी के पास क्या सबूत, किसी को पता भी नहीं चल सकता कि माँगी या नहीं माँगी। मौका पड़ने पर गधे को बाप कहना और बात है, परंतु लिखकर यह देना कि गधा किसी का बाप है—तोबा! सो प्रकाश ने टका सा जवाब दिया—"लिखकर माफ़ी नहीं माँगूँगा।"

संसार में ऐसा देखा गया है कि कभी-कभी एक ही वाक्य मनुष्य को अमर बना देता है और इतिहास में उसका नाम हो जाता है। राजा पुरु ने सिकंदर के यह पूछने पर कि तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाए, यही तो कहा था—"जो एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।" और, जनाब, आप समझिए कि पुरु का नाम लड़के छठी कक्षा से रटना आरंभ कर देते हैं। प्रकाश का इतिहास में क्या स्थान होगा, यह तो अभी नहीं कहा जा सकता, परंतु इस एक वाक्य ने उसे कॉलिज का हीरो और शहर के घर-घर की चर्चा बना दिया। आखिर कितने छात्र इतने बहादुर हैं, जो पहले तो शिक्षक को यह कह दें कि माफ़ी नहीं माँगेंगे और फिर कक्षा से बाहर निकलने से भी इनकार कर दें?

साथी तथा विरोधी सब उससे स्पर्द्धा करने लगे। काश, उनमें भी इतना साहस होता! छात्रों ने अपने-अपने घर जाकर कहा—"इसे कहते हैं हिम्मत! अरे, साहब, वह मुँह तोड़ जवाब दिया है कि जबड़े हिला दिए। अब वह पहलेवाला जमाना नहीं रहा कि भीगी बिल्ली की तरह सब कुछ सुन लिया जाए। अब जमाना आज़ादी का है।"

× × × ×

लेकिन, साहब, आप जमाने को क्या कहिएगा ! पहले गुरु होते थे, जो अपने शिष्यों का सुख-दुख अपना सुख-दुख समझते थे और उनकी समस्या को अपनी समस्या। गुरुओं ने इस समस्या को अपनी समस्या करके देखा, परंतु बिलकुल ही उल्टे दृष्टिकोण से। मामला रसायन विभाग के अध्यक्ष के पास पहुँचा। उन्होंने बुलाकर प्रकाश को

जो डाँटना आरंभ किया, तो उसके घुटने काँपने लगे। परंतु तभी एक छात्र, जो चाह रहा था कि उसे भी किसी प्रकार लीडर और हीरो बनने का अवसर मिले, बोल उठा—"लेकिन, साहब, आपको यह भी तो सोचना चाहिए कि उस समय मिस्टर डुग्गल वर्ग पहेली भर रहे थे। यदि वह अपने काम में मुस्तैद रहते और छात्रों पर दृष्टि रखते, तो प्रकाश कभी अपने स्थान से न हटता और न यह घटना घटती। इस कांड का पूरा उत्तरदायित्व मिस्टर डुग्गल पर है।"

"बको मत !" अध्यक्ष वर्माजी चिल्लाए।

सुनकर एक बार तो उस नए हीरो—जसबीर—की घिग्घी बँध गई। परंतु लीडरी का भूत बड़ा विकट होता है। उसने अपने काँपते घुटनों और हिलते हुए जबड़े को रोका और एक स्पीच झाड़ दी—"साहब, जमाना अब बदल गया है। अब हम शिक्षकों के अत्याचार नहीं

सहेंगे। डुग्गल साहब को निकाल दीजिए। हम अपना अधिकार माँगते हैं। बोलो, भाइयो, इंकलाब....।"

"जिंदाबाद!" बाहर खड़े छात्रों की भीड़ ने इस जोर का नारा लगाया कि शेल्फ़ पर रखी पाँच-चार शीशियों में इंकलाब हुआ और वे नीचे गिरकर टूट गईं। एक इंकलाब का सूत्रपात हो गया।

वर्माजी ने प्रकाश और जसबीर को एक सप्ताह के लिए रसायन विभाग की सब कक्षाओं से सस्पेंड कर दिया। अब क्या था! जसबीर ने बाहर खड़े होकर एक व्याख्यान दिया--"भाइयो, जबकि सारा संसार प्रगतिवादी है, हमारा कॉलिज और विशेषकर रसायन विभाग अभी तक प्रतिक्रियावादी है। परंतु हमें यह दिखा देना चाहिए कि अब जमाना बदल गया है, हम आजाद हैं। अपने अधिकारों के लिए हमें मिलकर काम करना चाहिए। पहला निश्चय तो यह है कि आज से हम लोग रसायन विभाग में स्ट्राइक कर रहे हैं। इसके बाद आज शाम को एक मीटिंग होगी, जिसमें यह निश्चय किया जायगा कि आगे क्या कार्यक्रम हो। परंतु सबसे पहले यह तो सब लोगों को प्रण कर ही लेना चाहिए कि जब तक हमारी माँगें पूरी न हों हम हड़ताल जारी रखेंगे।"

"लेकिन हमारी माँगें हैं क्या?" किसी ने पूछा।

"यह अभी निश्चय नहीं किया गया है। यह सब शाम की मीटिंग में होगा। आप लोगों से प्रार्थना है कि सब लोग आकर मीटिंग को सफल बनाएँ। याद रखिए, मिलकर काम करने में ही हमारी सफलता है।"

"जसबीर की....जय हो! जसबीर की" जय हो!"

"लेकिन, भाइयो," जसबीर बोला--"आप लोगों को हमारे इस आंदोलन के जन्मदाता वीर प्रकाश को नहीं भूलना चाहिए। वह ही वास्तव में इस महान् यज्ञ के पुरोहित हैं। बोलो, प्रकाश को ""।"

"जय हो!"

"प्रकाश की····"

"जय हो !"

केवल छात्रों ने ही मीटिंग की हो, ऐसी बात नहीं। गोलमाल सारे कॉलिज में फैल चुका था। बात प्रिंसिपल के कानों तक जा चुकी थी, सो स्टाफ़ की एक एमर्जेंसी मीटिंग बुलाई गई। प्रिंसिपल साहब के आने से पहले स्टाफ़ के सदस्य विभिन्न दलों में बँटे हुए बातें कर रहे थे। एक कोने में मिस्टर गुप्ता और मिस्टर निगम थे, दूसरी ओर शुक्लाजी और सिद्दीक़ी साहब थे। एक जगह अस्थाना, निगम और चटर्जी भिड़े हुए थे। कुछ पुराने लोग अलग-अलग अकेले बैठे हुए अपने अँगूठे घुमा रहे थे।

गुप्ताजी ने निगम से पूछा—"तुम्हारा क्या ख्याल है इस झगड़े के बारे में ?"

"ख्याल क्या, प्रकाश को लिखित क्षमा माँगनी ही चाहिए और अब तो उसे और जसबीर को कम-से-कम एक-एक वर्ष के लिए सस्पैंड कर ही देना चाहिए।"

"और डुग्गल के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ? डुग्गल का भी तो आखिर बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। जब टीचर्स क्लास में बैठकर वर्ग पहेली भरेंगे तो अनुशासन क्या खाक रहेगा ! मेरे विचार से तो डुग्गल पर झाड़ पड़ेगी।"

गुप्ताजी, आप हैं किस दुनिया में !" निगम ने कहा। "डुग्गल को कोई आँख उठाकर नहीं देख सकता, झाड़ना तो रहा अलग। वह चाहे क्लास में आए न आए, पढ़ाए न पढ़ाए। समझे ?"

"क्यों, क्यों ? आखिर उसमें कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं ?"

"तुम भी, यार, यों ही हो। जानते हो डुग्गल का बाप कौन है ?"

"अच्छा, तो यह बात है !"

"जी, यही बात है। मिस्टर डुग्गल सीनियर हैं, कॉलिज की मैनेजिंग कमेटी के प्रेजीडेंट। अभी हमारे प्रिंसिपल साहब प्रोबेशन पर

हैं। कनफ़र्म होने में छः महीने की देर है। इधर डुग्गल को कुछ कहा और उधर प्रिंसिपली गई। तभी तो, जनाव, नियुक्ति के समय दो सौ व्यक्तियों में से डुग्गल को छाँटा गया। तुम्हें मालूम है कि प्रार्थियों में तीन डी. एस-सी. थे और सात पी. एच. डी. और आधे से ऊपर फ़र्स्ट क्लास एम. एस-सी. और डुग्गल क्या है? थर्ड क्लास एम. एस-सी. तो, भैया, आजकल न डिग्री है, न योग्यता, न व्यक्तित्व। आजकल चाहिए मजवूत खूँटा।"

"अरे, वह तो है ही। सिन्हा को देख लो। सिन्हा मामूली सेकिंड क्लास एम. ए. है। उसके साथ कई पी. एच. डी. ने प्रार्थनापत्र दिए थे, परंतु लिया गया वही। क्यों? क्योंकि उसकी सिफ़ारिश एक बड़े बौस ने की थी। और हालांकि मुझे अपने सहकर्मियों की आलोचना नहीं करनी चाहिए, फिर भी कहना ही पड़ता है कि जो लोग इस प्रकार नौकरी पाते हैं और जो खूँटे के वल पर कूदते हैं, उन्हें परिश्रम करने से क्या मतलव!"

उसी समय प्रिंसिपल साहव आ गए। आते ही उन्होंने विना इधर-उधर की वात किए सीधे कहा—"मित्रो, हम यहाँ पर उस परिस्थिति पर विचार करने के लिए इकट्ठे हुए हैं, जोकि पिछले कुछ दिनों से हमारी संस्था में उत्पन्न हो गई है। आप लोगों का क्या विचार है कि जो छात्र इस दंगे के लिए उत्तरदायी हैं, उनके साथ क्या व्यवहार किया जाए?"

शर्माजी, जिन्होंने कॉलिज की सेवा में अपने पचीस वर्ष व्यतीत किए थे, बोले—"लेकिन, साहव, हमें इस वात पर भी तो विचार करना चाहिए कि आजकल जो अनुशासनहीनता कॉलिज में दिखाई पड़ती है उसके लिए शिक्षकगण किस सीमा तक उत्तरदायी हैं।"

"लेकिन, शर्माजी, इस समय हम छात्रों की अनुशासनहीनता पर विचार कर रहे हैं, शिक्षकों की नहीं। हम लोगों को व्यर्थ की वातों पर समय नष्ट नहीं करना चाहिए।"

शिक्षकों में बहुत से ऐसे थे जिनकी सर्विस केवल एक दो वर्ष की थी और जोकि अब तक कनफर्म (स्थायी) नहीं हुए थे। वे सब एक स्वर से चिल्लाए—"ठीक है, ठीक है! इस समय केवल इस बात पर विचार करना चाहिए कि छात्रों की अनुशासनहीनता पर कैसे अधिकार पाया जाए।"

अधेड़ अवस्था के भटनागर साहब धीमे से अपने पास बैठे यादव से बोले—"भई, बात तो बुड्ढे शर्मा की ही ठीक है। हम लोग भी तो कुछ हद तक दोषी हैं।"

"तो आप कुछ कहते क्यों नहीं?" यादव ने कहा।

"भई, बात यह है कि पंद्रह ही दिन में यूनीवर्सिटी सिनेट के लिए चुनाव होनेवाला है और मैं उसके लिए खड़ा हो रहा हूँ। इतने लोगों को दुश्मन बनाना ठीक नहीं।"

प्रिंसिपल साहब बोले—"सज्जनो, हम लोगों का पहला कर्त्तव्य है कॉलिज की उन्नति के लिए प्रयत्न करना। आजकल लोग अनुशासन पर बहुत ज़ोर दे रहे हैं। लेकिन उन्हें याद रखना चाहिए कि अनुशासन कॉलिज का एक अंग है, न कि कॉलिज अनुशासन का एक अंग। अनुशासन के पीछे कॉलिज की उन्नति रोकना मूर्खता है।"

"भई, प्रिंसिपल साहब कह क्या रहे हैं?" शर्माजी ने कुछ परेशानी से अपने पास बैठे महरोत्रा से पूछा।

उत्तर दिया दास ने जोकि कॉलिज की उन सब बातों का ज्ञाता था जो काग़ज़ों से बाहर की होती थीं—"भई, खड़ी बोली में इस व्याख्यान का अर्थ यह है कि प्रकाश के बाप ने इस बात का वचन दिया है कि यदि नई लायब्रेरी बनवाने के लिए चंदा इकट्ठा किया जाए तो वह एक ओर की—छोटीवाली—दीवार बनवा देगा। इसलिए प्रकाश के विरुद्ध कोई निर्णय करना तीन दीवार की लायब्रेरी बनवाना और कॉलिज की उन्नति के रास्ते में रोड़े अटकाना है।"

× × × ×

इस मीटिंग का भी वही नतीजा निकला जो ऐसी मीटिंग्स का होता है—जीरो । यद्यपि यह प्रस्ताव पास किया गया कि जी. एम. कॉलिज का स्टाफ़ इन घटनाओं से बहुत रुष्ट तथा क्षुब्ध है....छात्रों की इस अनुशासनहीनता को कभी सहन नहीं किया जायगा....परंतु अनुशासनहीनता चलती रही और स्टाफ़ सहन करता रहा ।

तभी एक दिन प्रिंसिपल साहब ने ऐलान किया कि जसबीर कॉलिज से निकाल दिया गया है और किसी भी शर्त पर वापस नहीं लिया जाएगा ।

शहर में सनसनी छा गई । कॉलिज में तो, खैर, पूर्ण हड़ताल हो ही गई । वहां से छात्रों के दल नगर की विभिन्न शिक्षा-संस्थाओं में हड़ताल करवाने निकले । लड़कों के स्कूलों में तो कोई कठिनाई नहीं हुई । जहाँ छात्रों का दल नारे लगाता हुआ स्कूल पहुँचा, लड़के अपने आप कक्षा से बाहर हो गए । परंतु लड़कियों के स्कूलों में शोरगुल होते ही फाटक बंद हो गए और सत्याग्रही बाहर ही रह गए । यद्यपि लड़कियों के स्कूलों व कॉलिजों में लड़के उस दिन कुछ नहीं कर सकते थे, फिर भी फाटक से हटने का कोई नाम ही नहीं लेता था । कुछ तो शायद सचमुच ही अपने इस सत्याग्रह में विश्वास करते थे, परंतु अधिकांश तो केवल आँखें सेंकने ठहरे हुए थे । और दिन लुकछिप कर अकेले या एक दो साथियों के साथ, सड़कों पर या गेट से कुछ दूर खड़े होकर घूरते थे, उस दिन तो बिलकुल गेट को घेरकर खड़े होने का बहाना मिल गया था । जो एक-आध लड़की छुट्टी होने पर बाहर निकलती, उसे सबके सब घेरकर एक साथ अपने सत्याग्रह का उद्देश्य, उसका महत्त्व, आदि समझाने लगते थे ।

अगले दिन तो सवेरे से ही विभिन्न कॉलिजों और स्कूलों के प्रवेश द्वारों पर सत्याग्रही जम गए । लड़कियों के कॉलिजों पर स्वभावतः अधिक भीड़ थी । कुछ कॉलिजों के अध्यक्षों ने जी. एम. कॉलिज के

प्रिंसिपल से शिकायत की कि उनके यहाँ के छात्र गड़बड़ कर रहे हैं। जिनके नाम ज्ञात हुए उन्हें भी कॉलिज से निकाल दिया गया। हड़ताल ने और जोर पकड़ा।

लड़कों ने शहर में भी हड़ताल करा दी। बाजारों में लड़कों ने खड़े होकर लेक्चर दिए—"शहर के नागरिको, हम आप लोगों के बच्चे हैं। कॉलिजों में हम पर अत्याचार होते हैं। हम अपना अधिकार माँगते हैं, तो वे हमें पढ़ने के लिए कहते हैं। हम किसी शिक्षक को निकालना चाहते हैं, तो उलटे हम ही निकाल दिए जाते हैं। हम पूर्ण हड़ताल करके अपना विरोध प्रकट करना चाहते हैं। हमें आप लोगों का सहयोग चाहिए। आप लोग भी हड़ताल करके कॉलिज अधिकारियों के प्रति अपना विरोध प्रकट कीजिए।"

जिस ओर लड़के निकल पड़े, उसी ओर फटाफट दुकानें बंद हो गईं। जहाँ अपने आप बंद नहीं हुईं, वहाँ छात्रों ने सहायता कर दी—यही दो चार शीशे तोड़ दिए, पाँच-सात दुकानें लूट लीं, और दस-बीस खोनचे उलट दिए। बाजार बंद होने लगा। गुंडों की बन आई। छात्रों की भीड़ में मिलकर उन्होंने मजे किए और सच पूछिए तो उस समय यह पहचानना मुश्किल हो गया कि कौन गुंडा है और कौन छात्र।

कॉलिज में हड़ताल हो गई, बाजार में हड़ताल हो गई। नगर के संभ्रांत नागरिक बेकार हो गए, तब उन्हें परिस्थिति का पता चला; समस्या पर विचार करने के लिए नागरिकों की एक सभा हुई। सभा आरंभ होने से पहले सभी आपस में बातें कर रहे थे। एक लालाजी ने अपने पड़ोसी से कहा—"भाईजी, जब ते यो अस्कूल बंद हुआ म्हारी तो तबाई आ ली। लमडे सारे दिन दंगा करते रहें। पहले तो अस्कूल में चले जाएँ, बस छुट्टी हो जा थी।"

"पर, भाई, अस्कूल में हड़ताल क्यूँ हुई ?"

"मास्टर लोग ज़ादती करें हैं और के ! तनखा वढ़वाने को कहते होंगे। तनखा नहीं वढ़ी तो उन्होंने अस्कूल वंद कर दिया।"

"साल भर में सौ दिन तो ये लोग पढ़ावें, दो सौ दिन मौज मारें, फेर भला तनखा किस वात की वढ़वावें ? अरे, जितने दिन खाली वैठें उतने दिन अपने कोई होर धंधा देखें। होर फेर ट्यूसन भी तो करें हैं। जिस मास्टर के धोरे म्हारा वड़ा लमडा पढ़ने जावे, उसके धोरे पंचस लमडे और पढ़ें हैं। भतेरी कमाई हो जाय मास्टरजी की भी।"

"हां, यो तो वात हुई। मेरा लमडा तो कॉलिज में पढ़े है। वहाँ के तीन मास्टर तो मेरे धोरे इंस्योरेंस के वास्ते आ लिए। अव पूछो इन तें अक तनखा पाओ, ट्यूसन करो, इंस्योरेंस करो, होर क्या किसी का घर लूटोगे ?"

दूसरी ओर एक पढ़े-लिखे साहव, जो किसी सरकारी दफ़्तर में नौकर थे, अपने जैसे ही अपने साथी से वोले—"आपका लड़का कहाँ पढ़ता है ?"

"जी. एम. कॉलिज में पढ़ता है शायद।"

"कौन सी क्लास में ?"

"अरे साहव, इसका पता कौन रखता है ! यहाँ तो सवेरे से शाम तक दफ़्तर के काम से ही फ़ुरसत नहीं मिलती, वल्कि कभी-कभी तो घर पर भी काग़ज़ लाने पड़ते हैं। ऊपर से वच्चों की पढ़ाई की भी चिंता हो, तव तो मर लिए। अपना काम तो इतना है कि कॉलिज में नाम लिखा दिया और हर महीने फ़ीस दे दी और किताबों के पैसे दे दिए। वहुत हुआ तो एक ट्यूशन लगा दिया। वस इसके वाद मुझे कोई मतलव नहीं।"

"और क्या, यह तो है ही। और फिर आजकल तो पढ़ाई-लिखाई नाम को ही रह गई है। वह तो इतना है कि कॉलिज जाकर एक डिग्री मिल जाती है, वाक़ी तो अपनी जानपहचान और रसूख से काम चलता है।"

९८.

"लेकिन, साहब, अब तो यह झगड़ा निबटना चाहिए। लड़के घर खाली बैठेंगे, तो और शरारत करेंगे। सारे दिन मटरगश्ती करेंगे, चाय कॉफी पिएँगे और हुल्लड़बाजी करेंगे। कॉलिज में जाते हैं तो इस बात से तो निश्चिंत रहते हैं।"

नागरिकों ने प्रस्ताव पास किया कि झगड़ा दूर होना चाहिए। लेकिन झगड़ा दूर नहीं हुआ; बल्कि और बढ़ा। छात्रों की ओर से हड़ताल के बाद जलूस, नारे, और भूख हड़ताल हुए। उसके बाद रसायन-प्रयोगशाला पर हमला, एक-आध शिक्षक को, जो कभी भी देर में आने पर हाजिरी नहीं लगाता था और न क्लास में से उठकर जाने देता था, कंबल उढ़ाया गया।

× × × ×

कॉलिज अधिकारियों ने कुछ और छात्रों को कॉलिज से निकाला और पुलिस बुलाई। पुलिस ने लाठी चार्ज किया, गोली चलाई, क्योंकि छात्रों ने पुलिस पर पत्थर बरसाए थे। नागरिकों ने और प्रस्ताव पास किए और उन नागरिकों ने जो विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता थे, छात्रों के द्वारा अपना उल्लू सीधा किया। किसी ने तोड़-फोड़ कराई, टेलीफ़ोन के तार काटे, डाकखाने फूँके और नाम हुआ छात्रों का। किसी ने अपनी विरोधी राजनीतिक पार्टी पर कीचड़ उछाला, अपनी खोई हुई लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए, और यह हुआ छात्रों की भलाई के लिए! गुंडों ने दुकानें लूटीं, अग्निकांड किए, और नाम लगा छात्रों का। कुछ शिक्षकों ने इस अवसर से लाभ उठा, अपने सहकर्मियों पर दोष मढ़ा, कुछ ने और अधिक ट्यूशन किए, पिछले साल की कमी पूरी करने के लिए, और हुआ सब छात्रों की भलाई के लिए। छात्रों ने समझा, उन्होंने इंक़लाब किया है।

परंतु असल बात तो यह है कि सब बुरी तरह ऊब गए। क्रोध ठंडे हुए, जोश का उबाल शांत हुआ, कुछ समझ आई तो सब उतावले हुए

कि किसी प्रकार समझौता हो। छात्रों ने अपनी माँगों में से काफ़ी माँगों को निकाल दिया, डुग्गल साहब बेशक कॉलिज में रहें, बेशक जुरमाने हों। लेकिन अब केवल एक माँग रह गई थी कि सबसे पहले दिन जो खिड़की का शीशा टूटा था, उसे कॉलिज अधिकारी पहले लगवा दें, फिर सब छात्र चुपचाप अपनी कक्षाओं में चले जाएँगे और अपनी अनुशासनहीनता के लिए क्षमा माँग लेंगे। कॉलिज अधिकारी वर्ग ने छात्रों की अधिकांश माँगें स्वीकार कर लीं। जितने छात्र निकाल दिए गए थे, वापस ले लिए जाएँगे—एक साधारण सी क्षमायाचना यथेष्ट होगी। परंतु पहले दिन जो शीशा टूटा था, उसे प्रकाश अपने पैसों से लगवाए।

सो अब झगड़ा केवल एक खिड़की के एक काँच का रह गया था—यद्यपि इस बीच बहुत से तोड़े गए थे और मरम्मत किए जा चुके थे। दोनों ओर का मान-सम्मान केवल एक काँच के टुकड़े पर अटका हुआ था और झुकना कोई भी नहीं चाहता था।

कॉलिज में पानी पिलानेवाले बूढ़े दुर्गा पंडित ने भी यह सब देखा। उसने वह समय देखा था, जब शिक्षक उस समय संस्था में आते थे; जब उनकी दाढ़ी मूँछ भी पूरी तरह नहीं निकली होती थी और फिर कॉलिज से उनकी अर्थी ही जाती थी। उसने उन शिक्षकों को भी देखा था, जिन्होंने अपनी जिंदगी छात्रों की जिंदगी बनाने के पीछे बिगाड़ दी थी। उसने वे छात्र भी देखे थे, जिनके लिए माँ-बाप से बढ़कर शिक्षक था, जिन्होंने जीवन में वे पद प्राप्त किए और वह सत्ता प्राप्त की, जिसकी कोई भी आकांक्षा कर सकता है, परंतु शिक्षक के सामने

जब आए, तो वैसे ही बच्चे बनकर जैसे पहले दिन तख़्ती और बुदका लेकर आए थे, जिनका सबसे बड़ा कर्त्तव्य था, पढ़ना और विद्या प्राप्त करना। उसने वे भी माँ-बाप देखे थे, जो थे लखपति और करोड़पति, परंतु शिक्षक उनके घर गया तो अपना आसन छोड़कर खड़े हो गए। वे भी माता-पिता देखे थे, जो शिक्षक के घर इसलिए खड़े रहे कि यह मालूम करें कि उनका बच्चा कैसी शिक्षा प्राप्त कर रहा है।

लेकिन, खैर, वे दिन तो बदल गए। परंतु यह अब जो झगड़ा काँच के एक टुकड़े के पीछे हो रहा है, उसका क्या हो? दुर्गा पंडित ने चुपके से एक काँच बेचनेवाले को बुलाया और पूछा—"क्यों, भाई, इस काँच के लगाने में क्या खर्च होगा?"

"अरे, कुल सवा रुपए ही की तो बात है।" उसने उत्तर दिया।

अब फिर जी. एम. कॉलिज की रसायन-प्रयोगशाला में पूर्ववत काम होता है, लड़के शोर मचाते हैं, लड़कियों पर आवाज़ें कसते हैं और डुग्गल साहब वर्ग पहेली भरते हैं।

चूहे भाग बिल्ली आई !

स्थानीय शाखा के मैनेजर मिस्टर सक्सेना नित्य की भाँति तलवार म्यान से बाहर निकाले दफ़्तर में घुसे। चपरासी ने खट से

सलामी दी, ऑफ़िस सुपरिण्टण्डेण्ट ने पान भरे मुँह से सलाम किया और माथे पर हाथ लगाकर वह पेट से ऊपर आधे आगे की ओर झुक गए।

सक्सेना साहब ने एक दृष्टि ऑफ़िस पर डाली। सब क्लर्क आ चुके थे; उन्होंने चिल्लाकर कहा—"सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब, वह कुरसी टेढ़ी क्यों रखी हुई है? जब आप ऑफ़िस की साधारण देखभाल नहीं कर सकते, तब आपसे और क्या होगा? अगर मैं ही सब काम देखूँ तो फिर आप लोगों को बेकार तनख़्वाह देने से क्या लाभ? डाक ले आइए।"

सक्सेना साहब ने सिगरेट-होल्डर में सिगरेट लगाई और धुआँ छोड़ने लगे। डाक में आए हुए पत्र देख-देखकर, वह मुंह में सिगरेट-होल्डर लगाए हुए ही उन पर टिप्पणी करने लगे....."इसमें कुछ नहीं है, फाइल कर दीजिए", "बकटा है", "इसको लिख दीजिए कि अपनी आवश्यकताएँ जरा और शाफ-शाफ लिखें।" परन्तु ज्योंही चौथा पत्र उनके हाथ में आया और उसमें लिखे संदेश पर उनकी दृष्टि पड़ी; त्योंही सुपरिण्टेण्डेण्ट की उपस्थिति के बावजूद उनके मुंह से सिगरेट-होल्डर छूट गया और उनका जबड़ा घबराहट से कांपने लगा। उन्होंने शेष पत्रों को सामने से हटाते हुए कहा—"इन पर जो कुछ कार्रवाई करनी हो आप कर लीजिए और फ़ौरन ऐडीशनल असिस्टेंट और डिप्टी मैनेजर साहब को हमारा सलाम दीजिए।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट "बहुत अच्छा, साहब" कहकर चला गया। सक्सेना साहब ने घंटी का बटन दबाया। बाहर से कोई नहीं बोला। उन्होंने दुबारा घंटी बजाई। कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। अबकी बार वह बटन को आधे मिनट तक दबाए रहे। बाहर से दो-तीन चपरासियों की आवाज़ आई—"हु....जू....र!"

चपरासियों को देखते ही सक्सेना साहब चिल्लाए—"कहाँ मरे रहते हो तुम सब लोग! सारे दिन मटरगश्ती करते रहते हो। आज तक कभी भी काम के वक्त हाजिर नहीं मिले।....जाओ पी. ए. को बुलाओ।"

जब चारों मैनेजर, पी. ए. और सुपरिण्टेण्डेण्ट इकट्ठे हो गए; तब सक्सेना साहब ने वही पत्र निकाला और अपनी गम्भीरतम मुद्रा

कहा—"सज्जनो ! हमारे जनरल मैनेजर इस शाखा का निरीक्षण करने आ रहे हैं।"

कमरे में ऐसी चुप्पी छा गई कि लोगों के साँस की आवाज़ भी सुनाई देने लगी। आख़िर शर्माजी ने अपने सूखे होंठों को जीभ से तर करके पूछा—"कब ?"

"परसों। और शायद आप लोगों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी ऐसा करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि जी. एम. कितने सख़्त आदमी हैं। इस बार वह अपनी सब शाखाओं के दौरे पर निकले हैं और बाहर की शाखाओं से जो रिपोर्ट आ रही है, उन्हें पढ़-सुनकर मेरा तो दिल डूबा जा रहा है। वह लोगों को वहीं खड़े-खड़े डिसमिस कर रहे हैं। परसों ही कलकत्ते में दो आदमियों को निकाला है।"

सहकर्मियों को इस सूचना से कुछ भी शांति न मिली। प्रत्येक को अपनी-अपनी चिन्ता पड़ गई। जनरल मैनेजर (जी. एम.) इस बार चार वर्ष बाद आ रहे थे और इन चार वर्षों में इस ऑफ़िस में क्या कुछ नहीं हुआ था। मिस्टर सक्सेना ने कहा—"सवाल तो यह है कि अब क्या किया जाए। यह तो हम सब जानते हैं कि इस ऑफ़िस की क्या अवस्था है।....बड़े बाबू, कुल फ़रनीचर कितना है अपने ऑफ़िस में ?"

"रजिस्टर देखकर बता देता हूँ, परंतु यह तो निश्चित है कि जितना मंज़ूर कराया गया है, उसका आधा है," बड़े बाबू ने कहा।

"क्यों ?" मिस्टर सक्सेना ने पूछा।

"क्यों क्या ? जितना रुपया हर साल हेड ऑफ़िस से मंज़ूर हुआ है, उसका आधा पार्टियों में ख़र्च हो गया है। इस साल नए परदों के लिए रुपए मिले थे, लेकिन परदों के बदले चिकें ली गई हैं।"

"क्यों ?"

"आप ही ने तो आर्डर दिया था।"

"हूँ,....अच्छा तो आप रजिस्टर लाइए और हमें बतलाइए कि कितना फ़रनीचर कम है।....और हाँ; देखिए, वह जो लक्ष्मी फ़रनीचर हाउस के नाम का पैड छपा है उसे हमारे पास ले आइए। उस पैड को पहले नष्ट कर देना चाहिए। कहीं नज़र पड़ गई तो जेल हो जाएगी, नौकरी की तो बात ही क्या।"

"अरे, तो कोई फ़रनीचर ही देखने आ रहा है वह?" ऐडीशनल मैनेजर क़ासिम ने कहा।

"भई, क्या ठिकाना! कहीं स्टॉक चेक कर बैठे!"

"क्या, यह फ़रज़ी फ़रनीचर स्टॉक-बुक में दर्ज है?" असिस्टेंट मैनेजर एडवर्ड ने पूछा।

"बड़े बाबू से पूछते हैं," सक्सेना साहब ने कहा और बड़े बाबू को बुलाकर पूछा—"बड़े बाबू फ़रनीचर की स्टॉक-बुक पूरी है?"

"नहीं।"

"तो कैसे पता चलेगा कि कितने फ़रनीचर की मंज़ूरी मिली है?"

"उसके लिए एक अलग सूची है।"

"अच्छा, तो सबसे पहले यह काम करो कि एक रजिस्टर लेकर उसमें पूरा स्टॉक दर्ज कर दो। जिस-जिस तारीख़ को मंज़ूरी मिली है, उसके दो-एक दिन के अन्दर ख़रीद दिखा दो और उसके साथ लक्ष्मी फ़रनीचरवाले कैश-मीमो लगा दो। रजिस्टर पूरा करके हमसे दस्तख़त करा लो।....और हाँ, हमें जल्दी ही उन सब चीज़ों की सूची दे दो, जो मंज़ूर हुए स्टॉक से कम हैं।"

"बहुत अच्छा," बड़े बाबू ने कहा और वह चला गया।

"ख़ैर, स्टॉक का इन्तज़ाम तो मैं कर लूँगा," सक्सेना साहब ने कहा—"लेकिन बहुत से रजिस्टर पूरे नहीं हैं, उनका क्या हो?"

"जो क्लर्क इसके लिए जिम्मेदार हों, उन्हें बुलाकर खटखटाना चाहिए। जो क्लर्क कामचोरी करते हों, उन्हें फ़ौरन निकाल देना चाहिए," डिप्टी मैनेजर शर्मा ने कहा। वह अभी नया-नया विश्वविद्यालय से निकला था और दिन में अठारह घंटे काम करने में विश्वास करता था।

"क्लर्कों को निकालना इतना सरल नहीं है आजकल," सक्सेना ने कहा।

"और क्या !" क़ासिम ने अनुमोदन किया, "यूनियन बनी है उनकी। किसी क्लर्क को डाँट भी दो तो फ़ौरन हड़ताल कर बैठते हैं। ऑफ़िस में हड़ताल हो जाए, तो हमें भी लेने के देने पड़ जाएँगे।"

"जनाब, फ़िज़ूल की बातों में क्या रखा है। यह वाद-विवाद तो बाद में भी हो सकता है। पहले आप यह बताइए कि वर्तमान परि-स्थिति में किया क्या जाए ?" सक्सेना ने चिन्तित स्वर में कहा।

"मेरा विचार है कि आप लोगों को रात-दिन लगकर अपने-अपने विभाग के रजिस्टर पूरे कर लेने चाहिए," शर्मा ने कहा।

"आप लोगों को ?" क़ासिम ने कहा।

"जी हाँ, मेरे विभाग का काम तो बिलकुल अप-टू-डेट है।"

"लेकिन वैसा होना नामुमकिन है," एडवर्ड ने कहा।

"क्या मतलब ?" शर्मा उत्तेजित होकर बोला—"जनाब आप मेरे रजिस्टर देख....।"

"अरे यह मतलब नहीं," एडवर्ड बोला, "मैं तो यह कह रहा था कि इतनी जल्दी रजिस्टर पूरे नहीं हो सकते।"

"कोशिश तो करनी चाहिए।"

"ऐसी कोशिश से क्या फ़ायदा जिससे कोई नतीजा न निकले ?" दोस्तो, मुझे एक तरकीब सूझी है। वह ऐसी नई सूझ है कि मजा आ जाएगा।"

"क्या ?" क़ासिम और सक्सेना ने पूछा।

"हमारे जनरल मैनेजर आ रहे हैं। यह स्वाभाविक है कि बहुत-से लोग उनसे मिलने आएँगे। दो ही दिन तो ठहर रहे हैं। चार-छः डेप्यूटेशन और डेलीगेशन (शिष्टमंडल) मिलवा दो, फिर देखना खाना खाने और चाय पीने का भी वक़्त नहीं मिलेगा। इसके अलावा दो-एक जगह से चाय और लंच का न्योता दिलवा दो। उनमें दो-दो घंटे तो निकल ही सकते हैं, बाक़ी डेप्यूटेशन में ; फिर ऑफ़िस का मुआयना करने का वक़्त ही कहाँ मिलेगा," एडवर्ड ने कहा।

"लेकिन डेप्यूटेशन किस का कराएँ ?" सक्सेना ने पूछा।

"अरे यह भी सोचा जा सकता है। मसलन एक तो क्लर्कों का ही हो सकता है।"

"क्लर्कों का ? उन्हें क्या परेशानी है ?"

"अरे, उन्हें तो कुछ-न-कुछ परेशानी लगी ही रहती है ; यही कह देंगे कि काम करने के घंटे बहुत ज्यादा हैं।"

"ज्यादा क्या हैं ? जितने सारी दुनिया में हैं, उतने ही तो हैं और उतनी देर भी कौन काम करता है ?"

"तो महँगाई का भत्ता बढ़वाने की माँग कर लेंगे।"

"दो महीने हुए तब तो महँगाई बढ़ी थी पाँच-पाँच रुपए। अब कैसे माँग कर सकते हैं ?"

"मतलब तो यह है कि किसी भी बात को ले सकते हैं, जैसे वर्किंग कण्डीशन्स (काम करने की शर्त) और अच्छी होनी चाहिए, फ़रनीचर और अच्छा होना चाहिए, सवारी-भत्ता मिलना चाहिए, या और कोई भी बात। जरूरी चीज तो यह है कि डेप्यूटेशन जाना चाहिए, जिसमें चार-पाँच आदमी हों, जो जी. एम. को दो घंटे उलझाए रखें।"

"आदमी जरा ढंग के हों," क़ासिम ने कहा—"गोपाल जैसे आदमियों को न रख देना, नहीं तो सब चौपट कर देगा। उस भले

आदमी को चौबीस घंटे यही रहता है, किसी को तनख़्वाह ज्यादा क्यों मिलती है और किसी को सुविधाएँ औरों से ज़्यादा क्यों मिली हैं। उसका बस चले, तो हमारी और रामदीन चपरासी की तनख़्वाह एक हो जाए।"

"हाँ, रिजवी को रख लेना। वह लच्छेदार उर्दू में ख़ूब चिलम भर सकता है और तिवारी 'श्रीमान्-श्रीमान्' ख़ूब करता है। एक बड़े बाबू को ले लेना। वह आदमी ख़तरनाक है, वह सारी बातें जानता है। उसका मुँह बन्द करने का यही रास्ता है।"

"लेकिन," एडवर्ड ने कहा—"पहले यह तय कर लेना चाहिए कि ये लोग कहेंगे क्या। पहले इनकी रिहर्सल हो जाए, नहीं तो आँय-बाँय-शाँय बकने लगेंगे या एक-दूसरे का मुँह ताकने लगेंगे। हाँ, तो शर्मा साहब आप जरा एक ड्राफ़्ट तैयार कर लीजिए कि इन लोगों को क्या-क्या कहना है।"

"भई, मेरे बस का यह काम नहीं है।"

"क्यों ?"

"जो काम आप कर रहे हैं, उसमें मुझे विश्वास नहीं है।"

"हमें अफ़सोस है शर्मा साहब," क़ासिम ने कहा, "कि आप में टीम-स्पिरिट (मिल-जुलकर रहने की भावना) बिलकुल नहीं है।"

"ख़ैर जाने दीजिए मिस्टर क़ासिम, आप ड्राफ़्ट तैयार कर लीजिए और इन लोगों को रिहर्सल करा दीजिए। और शर्मा जी," सक्सेना ने कहा—"आपसे कम-से-कम इतनी आशा तो है ही कि आप इन मामलों में चुप रहेंगे।"

इतने में बड़ा बाबू फ़रनीचर की सूची ले आया। सक्सेना ने एडवर्ड को अपने पास रोककर शेष लोगों को जाने दिया। दोनों में बड़ी देर तक मंत्रणा होती रही।

अगले दिन शर्मा जब ऑफ़िस पहुँचा, तो एक बार तो उसे भ्रम हुआ कि वह कहीं ग़लत जगह तो नहीं आ गया। ऑफ़िस पहचान में ही

नहीं आ रहा था। सब दरवाज़ों और खिड़कियों पर सुन्दर परदे टँगे थे। मेजों पर कपड़े बिछ गए थे और कमरों में फ़रनीचर इतना भर गया था कि आदमियों के लिए भी जगह नहीं बची थी। मकड़ी के जाले और धूल झड़ चुके थे। चपरासी भी रंग-बिरंगी क़मीज़ों और ऊँचे-नीचे बेढंगे पाजामों को छोड़कर उचित वेशभूषा में थे। बड़े बाबू के होठों से पहली बार पान की धारियाँ नीचे नहीं पहुँच रही थीं। प्रत्येक क्लर्क और चपरासी अपने-अपने स्थान पर उपस्थित ही नहीं था, बल्कि काम करता हुआ प्रतीत हो रहा था। शर्मा को इस बैल के व्याहने पर आश्चर्य हुआ। उसे तो यह सब जादू-सा प्रतीत हुआ। वह पूछे भी किससे, क्योंकि ऑफ़िस के महान् मुग़लों—सक्सेना और एडवर्ड—की अंतरंग में वह नहीं था। केवल क़ासिम ही ऐसा था, जो उससे मेल रखता था। क़ासिम यों तो लगभग मूर्ख था, परन्तु अपने मतलब के प्रति पूर्ण सतर्क तथा सजग था। पता नहीं क्यों, उसकी यह निश्चित धारणा थी कि किसी दिन शर्मा वहाँ का राजा होगा। इसलिए यद्यपि वह वर्तमान सत्ताधारियों की लल्लो-चप्पो में लगा रहता था, फिर भी भविष्य की ओर उसकी आँख थी।....तो शर्मा ने क़ासिम के पास पहुँचकर पूछा—"भई, यह कायापलट कैसे हो गई ?"

"क्या तुम नहीं जानते ?"

"नहीं, मेरे सामने कल तो कुछ बात हुई नहीं थी।"

क़ासिम को अपने बड़प्पन का गर्व हुआ, उसने ख़ुशी से बताया—"अरे ये सब चीज़ें सक्सेना और एडवर्ड साहब कुछ माँगकर लाए हैं, कुछ अपने-अपने घरों के लिए 'पसन्द न होने से लौटाने की शर्त पर' लाए हैं। परसों शाम को ये सब चीज़ें लौटा दी जाएँगी।"

"लेकिन आज ही ये सब क्यों सजा दी गई हैं ?"

"कल को तो सवेरे ही जी. एम. आ जाएँगे। इसके अलावा यह रिहर्सल है। कल से तो ड्रामा होगा," क़ासिम ने कहा।

वह पूरा दिन तैयारियों में बीता। सब अधिकारी सक्सेना के कमरे में जमा रहे। लोगों का ताँता लगा रहा। क़ासिम ने एक क्लर्क को एक अभिनन्दन-पत्र तैयार करने के लिए कहा और उसे सुझाया कि पत्र में यह शेर अवश्य लिखे—

वो हमारे घर पे आएँ, खुदा की कुदरत है,
कभी हम उनको, कभी अपने घर को देखते हैं।

एडवर्ड को एक और दूर की सूझी। एक पुलिस इंस्पेक्टर उसका मित्र था और मोटर साइकिल पर दौरा करना इसका काम था। एडवर्ड ने अपने मित्र को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि नियत दिन पर उसके दौरे का समय तथा मार्ग संयोग से जी. एम. की गाड़ी के चलने के समय और मार्ग से मेल खा जाए। इंस्पेक्टर को और कुछ नहीं करना होगा; वह जी. एम. की कार से थोड़ा आगे अपने रास्ते चलता चला जाए। वह अपना कर्त्तव्य करता जाए; पब्लिक और जी. एम. जो सोचना चाहें सोचें।

स्थानीय शाखा के सब कर्मचारी––सक्सेना साहब से लेकर मेहतर दुलीचंद तक––स्टेशन पर जी. एम. की प्रतीक्षा इस प्रकार कर रहे थे, जैसे वर की प्रतीक्षा कन्या-पक्ष करता है। ठीक आठ बजे गाड़ी स्टेशन पर पहुँची। जी. एम. फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में थे। गाड़ी रुकते ही सक्सेना साहब ने द्वार खोला और 'गुड मार्निंग सर' कहा। उसके पीछे एडवर्ड से लेकर दुलीचंद तक ने अपने-अपने ढंग से नमस्कार, सलाम और पालागन की। एक क्लर्क ने लपककर जी. एम. के गले में एक फूलमाला, जो विशेष रूप से तैयार कराई गई थी, डाल दी। जी. एम. को साँस लेने का अवकाश तब मिला, जब वह कार में बैठाए जाकर होटल की ओर ले जाए जा रहे थे। उनकी कार के आगे-आगे एडवर्ड का मित्र इंस्पेक्टर अपनी मोटर-साइकिल पर जा रहा था।

सक्सेना ने बात-ही-बात में जी. एम. को बतला दिया कि जिस होटल में उनके ठहरने का प्रबंध किया गया था, वह नगर में सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे अधिक व्ययसाध्य था। बात-ही-बात में यह भी पूछ लिया गया कि जी. एम. का दफ़्तर निरीक्षण करने का विचार कितने बजे था। साढ़े दस या ग्यारह का समय निश्चित हुआ था।

जब जी. एम. होटल पहुँचे, तब चार-पाँच व्यक्तियों का एक दल प्रतीक्षा करता हुआ मिला। सक्सेना साहब ने जी. एम. के अन्दर जाने के बाद, परन्तु इस बात का ध्यान रखते हुए कि उनके कानों तक सारी बातें पहुँच जाएँ, पूछा—"कहिए क्या काम है ?"

"जी. एम. साहब से मिलना है।"

"क्यों ?"

"एजेन्सी के बारे में।"

"तो लिखकर दीजिए। बाद में उस पर ग़ौर होगा।"

"नहीं हुज़ूर, आपकी बहुत मेहरबानी है हमारे ऊपर। इस बार बड़े साहब से और मिलने दीजिए।"

"लेकिन साहव अभी थके हुए आए हैं। अभी स्नान नहीं हुआ, चाय-पानी नहीं हुआ, कैसे आप लोगों से मिल लें ?"

"हुजूर हम इन्तजार कर लेंगे।"

"अच्छी वात है। साहव साढ़े दस वजे से पहले नहीं मिल सकते।"

फल यह हुआ कि वड़े साहव वारह वजे दफ़्तर पहुँचे। दफ़्तर का ठाठ देखकर उनकी आँखें खुल गईं। अभी प्रारम्भिक वातचीत हुई थी कि दो और डेलीगेशन आ पहुँचे। उनमें से एक को निपटाने में एक वज गया। उधर साढ़े वारह वजे से टेलीफ़ोन हर पाँच मिनट वाद वज रहा था। एक वार टेलीफ़ोन की घंटी लगभग वारह मिनट नहीं वजी। सक्सेना चुपचाप वाहर निकला और क़ासिम से वोला—"अरे, वह साला आपरेटर कहाँ मर गया, जरा देखो तो सही। उससे कहो कि घंटी हर पाँच मिनट पर वजनी चाहिए।" इन घंटियों में मध्याह्न भोजन का वुलावा भी था, जिसका निमंत्रण सवेरे ही स्वीकृत हो चुका था।

मध्याह्न भोजन के वाद आधा घंटे आराम किया गया। फिर एक डेलीगेशन को निपटाया गया। तीन और डेलीगेशन थे। परन्तु उनमें से एक को शाम को होटल पर वुलाया गया और दो को अगले दिन समय दिया गया। इतने में चाय का समय हो गया। चाय पर वढ़ते हुए मूल्यों और योग्य व्यक्तियों की कमी तथा उसका कारण, उचित वेतन का अभाव—आदि वातों पर विचार-विनिमय हुआ, तव ऑफ़िस वन्द हो गया। शाम को एक डेप्यूटेशन से वात हुई। फिर रात्रि-भोज हुआ। साहब थके हुए थे, इसलिए उन्हें जल्दी सुला दिया गया।

अगले दिन डेप्यूटेशन, लंच तथा चाय के वीच का जो कुछ समय वचा, वह साहव के साथ उनके पिछले स्थानों पर निरीक्षण के अनुभव तथा अगले स्थानों पर जाने के कार्य-क्रम के सम्वन्ध में वातचीत करने में वीते। इसी वीच विशेष प्रयत्नों द्वारा साहव के लिए उसी दिन

की गाड़ी में एक बर्थ रिज़र्व कराई गई। जाने के समय का कार्य-क्रम बना तथा अन्य बातों पर विचार कराया गया। ऑफ़िस के सामने जो कठिनाइयाँ थीं, वे पेश की गईं। पिछले दिनों में कम्पनी तथा जनता के सम्पर्क में कितना सुधार हुआ है तथा और कितने सुधार की गुंजाइश है, आदि बातों पर बातचीत हुई। इतने में पाँच बज गए।

सक्सेना साहब अपने साथियों सहित जी. एम. को छोड़ने के लिए स्टेशन गए। रास्ते में उन्होंने बड़ी नम्रता से जी. एम. से कहा—"हुज़ूर ने दफ़्तर का मुआयना तो किया ही नहीं।"

"आपके दफ़्तर का काम बहुत ठीक चल रहा है। मैं बहुत ख़ुश हूँ।"

सक्सेना साहब ने अपने हाथों गाड़ी का द्वार खोला, अपने आप खड़े होकर कुली से बिस्तर बिछवाया और चादर की शिकनें दूर कीं। कुली के अधिक पैसे माँगने पर साहबी आवाज़ में उसे फटकारा। फिर अपने हाथ से द्वार बन्द किया और गाड़ी के चलते-चलते कहा—"हुज़ूर ने यहाँ आने का कष्ट किया, इसके लिए हम हुज़ूर के आभारी हैं।"

पन्द्रह दिन बाद जी. एम. का पत्र आया। जी. एम. सक्सेना साहब के कार्य से बहुत प्रसन्न थे। सक्सेना साहब के वेतन में १००) की वृद्धि की गई थी और वह स्थानीय शाखा से कहीं अधिक महत्वपूर्ण शाखा के मैनेजर बना दिए गए थे।